VOL- VIII ISSUE- IX SEPTEMBER 2021 PEER REVIEW e-JOURNAL IMPACT FACTOR 7.149 ISSN 2349-638x

तुलसीदास का जीवन–दर्शन

मनोज कुमार यादव
असि. प्रोफेसर (हिन्दी विभाग),
डी ए वी डिग्री कॉलेज,
लखनऊ (उ० प्र०)

तुलसीदास जी का जीवन–दर्शन प्राचीन वैदिक ऋषियों एवं मुनियों के उस विराट् आदर्श से प्रेरणा ग्रहण करता है जो अभ्युदय और नि:श्रेयस के संसिद्धिकारी धर्म–चेतना के संरक्षण के प्रति निष्ठावान् रहा है। नानापुराण निगमागसम्मत उनका 'रामचरितमानस' इसी भव्य जीवन दर्शन का मूर्तिमान बिम्ब है। 'विनयपत्रिका' उनकी निजी ऐकातिंक जीवन दृष्टि की सिद्धान्त–गीता है, तो मानस उनके विश्व–जनीन सामाजिक दर्शन की 'आचार–संहिता'। 'कवितावली' के उत्तरकाण्ड तथा 'दोहावली' में युग–चेतना के प्रति उनकी अनेक धारणाओं और प्रतिक्रियाओं के स्फुट संकेत बिखरे हुए हैं। इस प्रकार तुलसी का जीवन–दर्शन विशिष्ट संदर्भों में उनकी विभिन्न कृतियों में अभिव्यक्त हुआ है।

तुलसी के जीवन–दर्शन का अनुशीलन कई दृष्टियों से संभव है। एक तो उसका सैद्धान्तिक पक्ष है जिसके अन्तर्गत ब्रह्मा जीव, जगत और माया आदि के सम्बन्ध में तुलसी की मान्यताओं का निरूपण आ जाता है और दूसरा उसका व्यावहारिक पक्ष है जिसके अन्तर्गत नीति, धर्म, परिवार, समान, आचार, आध्यात्म आदि विभिन्न संदर्भों में चर्चित आचारों और क्रिया–व्यापारों का प्रति–पादन आता है। व्यावहारिक पक्ष के भी दो स्थूल विभाग संभव हैं–

१. निजी व्यक्तिगत साधनापरक आदर्श और
२. लोकसंग्रहपरक सामाजिक विचारधारा।

इन दोनों क्षेत्रों में प्रेम, सौन्दर्य, दु:ख सुख, साधन और साध्य आदि के स्वरूप का चित्रण भी समाविष्ट हो जाता है।

भक्त तुलसी की दृष्टि में इस जीवन के चरम लक्ष्य और प्रतिपाद्य राघवेन्द्र भगवान राम हैं जो परमार्थ रूप साक्षात परात्पर ब्रह्म हैं और नित्य सच्चिदानंद स्वरूप हैं। वे सर्वतंत्र परमेश्वर परमात्मा हैं जिनका स्वरूप मन, वाणी और बुद्धि से परे है–

"राम ब्रह्म परमारथ रूपा।
अविगत अलख अनादि अनूपा।
सकल विकार रहित गतभेदा।
कहि नित नेति निरूपहिं वेदा"
"राम सच्चिदानन्द दिनेसा।
नहि तहँ मोहनिसा लवलेसा ।
सहज प्रकास रूप भगवाना।
नहि तहँ पुनि विग्यान बिहाना"
"राम सो परमात्मा भवानी।
राम स्वरूप तुम्हार वचन अगोचर बुद्धि पर"

अनादि राम ही सारी इंद्रियों के अधिष्ठाता देवों तथा जीवों के परम प्रकाशक हैं, मायाधीश ज्ञान और गुण के धाम हैं। यह सारा जगत प्रकाश रूप है, उसके प्रकाशक भगवान् राम ही हैं–

"विषय करन सुर जीवन समेता।
सकल एकते एक सचेता।

सब कर परम प्रकाशत जोई।
राम अनादि अवधपतिसोई।
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू।
मायाधीस ग्यान गुन धामू''

तुलसी के राम ज्ञानियों के परब्रह्म हैं, योगियों के परमात्मा हैं तथा भक्तों के भगवान् भी। वे एक साथ ही अवतारी भी हैं, अवतार भी, सारी चराचर सृष्टि के नियामक होते हुए, समस्त आकारों से परे रहते हुए भी वे भक्तों के प्रति प्रेमाधीन होकर दशरथसुत राघवेन्द्र राम के नर–रूप में लीलार्थ अवतरित होते हैं। अवतारवाद तुलसी के जीवन–दर्शन का मेरूदण्ड है। वे उस परब्रह्म के उपासक हैं जो अपने चिदानंद स्वरूप में ही नहीं रमण करता वरन् जो धरती की पीड़ा, मानवता की पुकार के प्रति भी निरन्तर जागरूक रहता है, वह नित्य सभी के उर में निवास करने वाला 'अगजमय' है और प्रेम के संवेग से प्रत्यक्ष होकर धर्म–संरक्षण तथा लोकरंजन के हेतु देहधारी होकर अपनी ललित लीलाओं और आदर्श आचरणों द्वारा लोक में आनंद और मर्यादा की प्रतिष्ठा करता है। तुलसी का जीवन–दर्शन किसी ऐसे परमात्मा का प्रतिपादक नहीं है जो कभी धरती पर अवतरित ही नहीं हो सकता। उनका सारा रामचरितमानस वस्तुतः इसी अवतार–वाद के जनव्यापी संदेश का प्रतिष्ठापक महाकाव्य है। इस अवतारवाद के पीछे तुलसी का मानवतावादी दृष्टिकोण भी विद्यमान है तो परमात्मा को देवत्व की रक्षार्थ मानव देह धारण करने को प्रेरित करता है। मनुज–धारी भगवान के अवतार को जो परमात्मा से अन्य सामान्य नर समझता है उसके प्रति तुलसी की वाणी बड़ी कठोर है। पार्वती के जरा से संदेह पर अवतारवाद के आचार्य भगवान शंकर रोषावेश में आकर जो कड़ी फटकार सुनाते हैं वह वस्तुतः अपने युग के उन सभी के प्रति तुलसी की फटकार है जो अवतारवाद के विशवास के खंडन में प्रवृत थे। इस प्रसंग की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

एक बात नहिं मोहि सोहानि।
जदपि मोह बस कहेहु भवानी।
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना।
जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना।
कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जो मोह पिसाच।
पाषंडी हरि पद विमुख जानहिं झूठ न साच।।
अग्य अकोविद अंध अभागी।
काई विषय मुकर मन लागी।
लंपट कपटी कुटिल विशेशी।
सपनेहु संतसभा नहिं देखी।।

स्पष्ट है कि तुलसी उन सभी व्यक्तियों को मोहग्रस्त, पाखंडी, अज्ञ, अकोविद और अभागा समझते हैं जो राम को परब्रह्म परमात्मा से भिन्न समझते हैं। यहाँ

'दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना।
रामनाम का परम है आना'।।

की पुकार लगाने वाल निर्गुणिया संतों के अवतार–विरोधी दृष्टिकोण के लिए तुलसी के जीवन–दर्शन में कोई स्थान नहीं। अलख जगाने वाले जोगियों को दी हुयी उनकी फटकार भी अवतार और धरती के प्रत्यक्ष सत्य के दर्शन की ओर एक सवल संकेत–स्वर है–

हम लखि लखहि हमार लखु हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखै राम नाम जपु नीच।।

तुलसी की जीवन–दृष्टि अन्तर्यामी भगवान में आस्था रखती है पर उससे भी अधिक उनकी–निष्ठा 'बाहिरजामी' राम में है जिनके द्वारा प्रत्यक्ष सक्रिय रूप में भगवान की सर्वशक्तिमत्ता और भक्तवत्सलता का उद्घाटन संभव होता है। 'कवितावली' में ब्रह्म की प्रत्यक्ष शक्तिमत्ता के साक्षात्कार पर बल देने वाली तुलसी की यह वाणी उनकी व्यवहारिक जीवन–दृष्टि की परिचायिका है–

।। अंतर्जामिहु तें बड़ बाहरजामि हैं राम
जे नाम लिये तें।
धावत धेनु पन्हाइ लवाई ज्यों बालक
बोलनिकान किये तें।।

अन्तर्यामी राम से भी बाहिर्यामी राम की भक्तवत्सलता को महत्व दने वाली यह जीवन–दृष्टि तुलसी के प्रत्यक्षधर्मी आदर्श की द्योतक है।

जीव को स्वरूपेण तुलसी ईश्वर का अविनाशी अंश, अंत: चैतन्य, अमल, सहज सुख की राशि मानते हैं यद्यपि माया के वशीभूत होने पर वह अहंकार और अज्ञान के बंधन में पड़कर हर्ष, विषाद आदि के द्वन्द्व से ग्रस्त रहता है–

"ईश्वर अंस जीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी।
सो मायाबस भयऊ गोसाई।
बंध्यों कीट मर्कट की नाई"
हरष विषाद ग्याना अग्याना।
जीव धर्म अहमिति अभिमाना।

माया को तुलसी ईश्वर की ही वशीभूत शक्ति मानते हैं जिसके दो भेद है:–

१.अविद्या माया
२.विद्या माया।

अविद्या माया जीवन को बंधन में डालकर दु:खमय भवकूप में निमग्न रखती है और विद्या माया प्रभु की प्रेरणा से सृष्टि की रचना करती है। मैं, मोर, तोर, तैं के काल्पनिक गोचर संबन्धों का सम्मोहक प्रपंच ही माया है। तुलसी के ही राम के शब्दों में–

"मैं अरू मोर तोर तैं माया।
जेहि बस कीन्हें जीव निकाया।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई।
सो सब माया जानेहु भाई।
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ।
विद्या अपर अविद्या दोऊ।
एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा।
जा बस जीव परा भवकूपा।
एक रचइ जग गुन बस जाकें।
प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके"

इस माया का निराकरण तुलसी की दृष्टि में भक्ति द्वारा ही संभव है। माया भगवान् की नर्तकी की भाँति है और भक्ति उनकी प्रियतमा जिससे माया भयभीत रहती है और जिसके उर में अबाध रूप से रामभक्ति का निवास होता है। उसे देखकर माया सकुचती है और अपना बल नहीं दिखा पाती है। अत: विज्ञानी मुनि समस्त सुख की खानि भक्ति की ही याचना करते हैं–

स्वयं भगवान राम के शब्दों में–

बड़े भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सदग्रंथन्हि गावा।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।
पाई न जेहि परलोक सँवारा।।
सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईश्वरहि मिथ्या दोष लगाइ।

तुलसीदास जी का जीवन–दर्शन कितना व्यवहारिक है, इसका प्रमाण उत्तरकांड के अन्तर्गत गरूड़ के सप्त प्रश्नों के उत्तर कथित कागभुशुंडि के वचन हैं जिनमें जीवन और जगत् की अनेक नैतिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का सार आ गया है। गरूण के द्वारा उठाये गये प्रश्न विश्व के मानव मात्र के मन में उठने वाले प्रश्न हैं। ये सात प्रश्न हैं–

१. सर्वाधिक दुर्लभ शरीर कौन है?
२. सबसे बड़ा दु:ख क्या है?
३. सबसे बड़ा सुख क्या है?
४. संत और असंत का धर्म एवं सहज स्वभाव क्या है?
५. सबसे बड़ा पुण्य क्या है?
६. सबसे बड़ा पाप क्या है?
७. मानस रोग कौन–कौन से है?

उत्तर क्रमश: इस प्रकार हैं–

१. नर तन के समान कोई शरीर नहीं। साथ ही यह शरीर नरक, स्वर्ग और अपवर्ग सभी का सोपान बन सकता है, ज्ञान विराग और भक्ति का विकास इसी शरीर में संभव है–

नर तन सम नहिं कवनहि देही।
जीव चराचर जाचत तेही।
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी।
ग्यान बिराग भगति सुभ देनी।।

नरक, स्वर्ग, अपवर्ग की सीढ़ी कहकर तुलसी ने इस तथ्य पर बल दिया है कि मानव शरीर

उपयोग के आधार पर पतन और उत्थान– दोनों का साधन हो सकता है।

२. दरिद्रता के समान संसार में कोई दूसरा दु:ख नही–'नहि दरिद्र सम दुख जग माही'। समाज के स्थूल अभाव के प्रति भी तुलसी कितने जागरूक हैं? इसका बोध इस कथन से होता है। मानस के रूसी अनुवादक वरन्नि–कोव ने इसी पंक्ति को देखकर यह घोषित किया था कि इस प्रकार की बात एक जनवादी महाकवि के मुख से ही निकल सकती है। तुलसी ने अभाव और दारिद्रय की पीड़ा की तीव्रता का अनुभव किया था।

३. संसार में संत–मिलन के समान दूसरा कोई सुख नहीं है। तुलसी जहाँ एक ओर दरिद्रता को एक बड़ा दुख कहते हैं वहाँ से समृद्धि मात्र को सबसे बड़ा सुख नहीं कह पाते। वे संत मिलन को सर्वाधिक सुख के रूप में महत्व देते हैं जिसके द्वारा मानव–जीवन चरम श्रेय की ओर अग्रसर होता है जो सारी समृद्धियों का वास्तविक लक्ष्य है। इस प्रकार धरती की स्थूल पीड़ा से लेकर आध्यात्मिक समृद्धि की असीमता तक तुलसी की जीवन–दृष्टि का विस्तार रहा है–

संत–मिलन सम सुख जग नाहिं।

४. संत का सहज स्वभाव मनसा, वाचा, कर्णणा परोपकार–वृत्ति है। दूसरों के लिए दु:ख सहन करना उनकी प्रवृत्तिगत विशेषता है। वस्तुत: तुलसी की दृष्टि में परहित ही सबसे बड़ा धर्म है–

'पर हित सरिस धरम नहीं भाई।'

जिस प्रकार संत जन परोपकार के लिए दु:ख सहते हैं उसी प्रकार अधम–असंत जन का स्वभाव यह है कि वे पर दु:ख के लिए कष्ट सहते हैं–

संत सहहिं दुख परहित त्यागी।
पर दुख हेतु असंत अभागी।
सन इव खल पर बंधन करई।
खाल कढ़ाई बिपति सहि मरई।।
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी.....
.....

बिना किसी स्वार्थ के रहने पर अपकार में तत्पर रहना असंत की प्रकृतिगत विशेषता है।

५. अहिंसा परम धर्म अथवा परम पुण्य है।

६. परनिंदा के समान कोई भारी पाप नहीं है–

परम धर्म स्रुति बिदित अहिंसा। परनिंदा सम अद्य न गरीसा।।

इस प्रकार 'अहिंसा' परमो धर्म:' का विश्वमैत्रीय स्वर तुलसी के जीवन–दर्शन में सुखरित हुआ है।

संदर्भ ग्रन्थ–सूची:

१. रामचरित मानस – २/११६
२. रामचरति मानस – २/११६
३. रामचरित मानस – १/११९
४. मानस – २/१२३
५. रामचरितमानस – १/११४
६. दोहा – १९
७. कविता – १२९
८. रामचरित मानस – ७/११७
९. मानस – ३/१५
१०. मानस – ७/११६
११. रामचिरत मानस – ७/१२१
१२. मानस – ७/४३
१३. मानस – ७/१२१
१४. रामचरित मानस – ७/१२१

प्रारम्भिक आधुनिक भारत में मुस्लिम समुदायों में विभिन्नता और एकता

सन्ध्या शर्मा,
प्रवक्ता,
विवेकानन्द महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय
drsandhyasharma@gmal.com

सरांश

भारतीय इतिहास लेखन व राजनीति में साम्प्रदायिकता को हिन्दू–मुस्लिम संदर्भ में ही समझा जाता है। प्रस्तुत लेख में मुस्लिम समाज में व्याप्त अन्तर, विभिन्नताएँ और मतभेदों को स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। प्रारम्भिक आधुनिक काल में जब स्वतन्त्रता आन्दोलन में हिन्दू तथा मुस्लिम प्रतिनिधि अपने समुदाय को संगठित कर रहे थे, इस्लाम धर्म का अनुसरण करने वाले लोगों में अनेक विभिन्नताएँ तथा मतभेद थे। बाम्बे इस्लाम तथा पारसी पंचायतें धार्मिक तथा सामाजिक कारकों के माध्यम से अपने समुदाय को आर्थिक, शैक्षिक तथा सामाजिक रूप से संगठित करने लगे थे फिर भी इनके आन्तरिक मतभेद सदैव चलते रहे हैं। मेरा तर्क है कि 'हिन्दू' या 'मुस्लिम' भारत में इस्लाम के आगमन से ही अनेक धाराओं और शाखाओं में बटें थे अत: इनकों साम्प्रदायिकता के संदर्भ में समरूप नहीं समझा जाना चाहिए।

प्रारम्भिक मध्यकाल में ७१२ इस्वी में सिन्ध पर अरब के खलीफा के सैनिक कमाडंर ने आक्रमण किया तथा प्राप्त शोधों में इस घटना को धार्मिकता के संदर्भ से समझा गया। यद्यपि इस प्रकार के मतों का खंडन भी किया जा चुका है फिर भी महमूद गजनी तथा मुहम्मद गौरी के आक्रमणों से लेकर दिल्ली सल्तनत तथा मुगल–साम्राज्य के अन्त तक के काल को मुस्लिम काल के रूप में स्वीकृति वर्तमान तक दी जा रही है। स्वतन्त्रता आन्दोलन में हिन्दू तथा मुस्लिम अस्मिताएँ और इनके बीच के अन्तर को राजनैतिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया गया।[१] विभाजन के बाद भारत के संविधान में अल्पसंख्यकों के रुप में मुस्लिम समुदाय एक पोषित तथा उपेक्षित वर्ग के रुप में उपस्थित रहा। जो भी कदम प्रशासन तथा राजकीय अधिकारियों द्वारा उठाए जाते थे उनमें पितृसत्तात्मक भावना स्पष्ट झलकती थी। वर्तमान में भी 'हिन्दू' तथा 'मुस्लिम' समुदायों को समरुप मानकर राष्ट्रीय अस्मिता से जोड़ने के प्रयास जारी हैं। इसके लिए अनिवार्य है कि हमें इन वर्गों के अन्तरों को स्पष्ट रुप से समझ लेना चाहिए। हिन्दू व 'हिन्दूवाद' पर गहन अध्ययन हुए है और वर्तमान में मुस्लिम समुदायों की समरुपता का भी खंडन किया जा रहा है।

दिल्ली सल्तनत की स्थापना बारहवीं शताब्दी में हुई थी जब तुर्कों ने पृथ्वीराज चौहान को तरायन के युद्ध में हरा दिया था परन्तु उसके पूर्व मुहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनी तथा तुर्कों की अस्मिता को भी धार्मिकता से अलग कर उनकी क्षेत्रीय पहचान के रुप में दर्शाया गया।[२] मैने अपने शोध लेखों में ब्रज–भाषा साहित्य के माध्यम से तर्क दिया कि हिन्दू और मुस्लिम अस्मिताएँ राजनैतिक हितों की पूर्ति के लिए प्रयोग की जाती थी।[३] केशव दास विरचित ग्रंथों में कवि मुगल बादशाह अकबर को म्लेच्छ, असुर, यवन तथा बुरे शासक के रुप में दर्शाया गया क्योंकि अकबर का मधुकर शाह तथा उनके पुत्र बीरसिंह देव से राजनैतिक सन्तुलन स्थापित नहीं हो पाया। परन्तु बीरसिंह देव का अकबर के पुत्र जहाँगीर से समझौता होने के बाद

वह 'जगती का इन्द्र' तथा 'दुहूँ दीन का स्वामी' हो जाता है। इसी प्रकार के अनेक संदर्भो से मैंने स्पष्ट किया है कि मुस्लिम व हिन्दू समाज धर्म नहीं अपितु राजनैतिक स्तर पर विभाजित किये जाते थे।

इसके पश्चात् ब्रिटिश काल में हिन्दू–मुस्लिम भेद से भारतीय समाज का विभाजन हुआ और इसके दूरगामी प्रभाव हम आज भी देख रहें है। इस काल में ब्रिटिश इतिहास लेखन में भारतीय इतिहास का काल विभाजन प्राचीन, मध्यकाल तथा आधुनिक काल के दायरे में सीमित कर इन कालों को क्रमश: हिन्दू मुस्लिम तथा ब्रिटिश काल भी माना गया।[४] यह विभाजन राष्ट्रवादी विचारकों की विचारधारा के अनुरुप था। एक ओर मुस्लिम समुदाय सैयद अहमद खान के काल से अपनी एक अलग पहचान बनाने की चेष्टा करने लगे तथा बीसवीं शताब्दी में मुहम्मद अली जिन्हा की 'मुस्लिम लीग' मुस्लिम वर्गो के लिए सक्रिय हुई। हिन्दू महासभाओं के माध्यम से सावरकर के 'हिन्दूत्व' की बृहत् व्याख्या हुई।[५] हमारा विषय यहाँ इन संस्थाओं व वर्गो के स्वतन्त्रता आंदोलन के संदर्भ में अध्ययन करना नहीं है। यह समझना अनिवार्य है कि इन अस्मिताओं को राजनैतिक स्तर पर प्रयोग किया गया और यथार्थ यह है कि हिन्दू व मुस्लिम कभी भी समरुप नहीं थे।

इस संदर्भ में यदि मुस्लिम समुदायों को बाम्बे के संदर्भ में देखा जाए तो नील ग्रीन ने अपनी पुस्तक में तर्कात्मक और गहन अध्ययन किया है।[६] १९०० ईस्वी के आरम्भ से विदेशी बाम्बे में अपने पैर जमा रहे थे। हिन्द महासागर के इर्दगिर्द देशों में बसे मुस्लिम व्यापार के लिए यहाँ बसने लगे थे। इन्होने वहाँ सूती कपड़े, रूई तथा जहाज निर्माण के कारखाने खोले। बॉम्बे में इसके अलावा हैदराबाद, गुजरात से रेलमार्गो से, काबुल, मुल्तान, सिन्ध, लाहौर, मद्रास, मालाबार, दक्कन, अफ्रीका, ईरान व तूरान आदि विभिन्न जगहों से मुस्लिम बाम्बे में बस रहें थे।[६] नील ग्रीन के अनुसार बॉम्बे में ही अनेक बॉम्बे थे जैसे कि ब्रिटिस बॉम्बे, मराठी बॉम्बे तथा पारसी बॉम्बे।[७] इनके साथ साथ अनेक संतो के मुस्लिम चितंको तथा शैक्षणिक सस्थाओं को चुनौती दे रहे थे।

१८४०–१९१५ के बीच बॉम्बे ब्रिटिश साम्राज्य का तीसरा बडा शहर बन चुका था। इसी के साथ मुस्लिम आबादी भी बहुत बढ़ गयी थी। उल्लेखनीय है कि अनेक प्रदेशों से आए मुस्लिमों ने अपने मौहल्लों में अपने समुदायों को संगठित किया। इनकी मस्जिदें भी इनके धार्मिक परिवारों से संचालित होती थीं। एक ओर उद्योग पनप रहे थे तो इन समुदायों के हितों के लिए संघर्ष से अन्तर्विरोध पैदा हो रहा था। इसी काल में मुहम्मद अली जिन्हा मुस्लिम लीग के राष्ट्रीय अध्यक्ष बने और उन्होंने मुस्लिम एकता के लिए बॉम्बे में प्रयास आरम्भ किया।[८] अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर कौमी एकता के लिए तुर्की में हुए खिलाफत आन्दोलन में भरपूर योगदान दिया गया। ग्रीन का विचार है कि १९२०–२१ तक मुस्लिम लीग का उद्देश्य एक नया राष्ट्र बनाने या अंग्रेजों के राज को हटाने का नहीं था बल्कि इस्लामी प्रचार था। धर्म और राजनीति में अन्तर रखा जा रहा था। धार्मिकता के बदलते हुए स्वरुप से परम्परा तथा संशोधन के बीच टकराव हुआ और अनेक मुस्लिम सुधारवादी आंदोलन भी होने लगे थे। मुस्लिम समाज विश्वस्तरीय सस्थाओं के अलावा छोटी–छोटी स्थानीय संस्थाओं में विभक्त हो गया।

तकनीकी विकास के कारण बॉम्बे इस्लाम का प्रचार अधिक हुआ। ब्रिटिश सरकार धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करती थी इसलिए प्रचार–प्रसार अधिक हुआ। फिर भी लखनऊ के मुस्लिम समुदाय की तरह बॉम्बे में कोई वक्फ बोर्ड नहीं बना। क्रिस्टियन मिशनरियों से प्रतिस्पर्धा के कारण इन बहुलवादी धार्मिक प्रवृत्तियों को बल मिला। ग्रीन के अनुसार अपनी मातृभूमि छोडकर आए मुस्लिमों ने काफी एकता दिखाई फिर भी विभाजन खत्म नहीं हुआ। इसका कारण इन सभी वर्गो के व्यवहारिक रीति–रिवाज में अन्तर था। कुछ वर्ग बॉम्बे की आधुनिकता के परिवेश में ढलने लगे। अब इस्लाम पहले इस्लाम से भिन्न हो गया। यह

धार्मिकता किस प्रकार की थी यह विचारणीय विषय है। तीर्थ, धार्मिक कर्म–कांड, साहित्य अध्ययन, प्रचारकों द्वारा बनाए गए धार्मिक सिद्धान्त व नियम, आत्मिक व नैतिक तुष्टि, शारीरिक उपचार तथा चमत्कारी धर्मगुरूओं ने नई धार्मिकता का सृजन किया।[९] एक ओर आधुनिकतावादी प्रचारक थे तो दूसरी ओर पारिवारिक अंजुमन व दरगाहें थीं। इसी प्रकार जमात एक पारम्परिक संस्था थी जिसमें उत्तराधिकार व चयन को लेकर मतभेद थे। मजारें सूफी पीरों के वशंज चलाते थे तथा भाई चारे से इनकी प्रसिद्वि फैलती थी। जहाँ छपाई के माध्यम से कुछ संस्थाओं का प्रचार होता था, पीरों के चमत्कार उन्हें प्रसिद्व करते थे। बॉम्बे इस्लाम ने न केवल मुस्लिमों को प्रभावित किया बल्कि अन्य धर्मो ने भी इसका अनुसरण किया। इस प्रकार बॉम्बे के मुस्लिमों को अनेक रूपों में समझा जाना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त प्रवासी मुस्लिमों ने अपने देश या प्रदेश के ग्रामीण तीर्थ–स्थलों के उपक्रम भी बनाने आरम्भ कर दिए थे। मुहर्रम के जलसों में केवल शिया ही नहीं बल्कि सभी वर्गो के लोग थे। मज़ारें भी बॉम्बे में बहुत थीं। यहाँ संगीत केवल मनोरंजन के लिए नहीं था बल्कि पीर बाबा हवशी की मजार पर तो दमाली तथा चिनूगी नर्तक नाचते हुए सिद्वि प्राप्त कर लेते थे। इसी प्रकार पैड्रो शाह की मजार का भी इस्लाम के सार्वजनिक परिसर का विस्तार करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा। इन समुदायों की विषमताओं और जटिलताओं को ध्यान में रखते हुए बॉम्बे इस्लाम व मुस्लिम समुदायों को समरुप नहीं कहा जा सकता।

माडर्न एशियन स्टडीस नामक जनरल ४, ३ (१९७०) के अंक में छपे अपने लेख में क्रिस्टिन डॉबिन में लिखती हैं कि मध्य काल से ही गुजराती व्यापारिक वर्ग ने अपने को व्यापारिक संघो में सगंठित कर लिया था तथा अपनी पंचायत बना ली थी। इनके माध्यम से ये व्यापार को सुचारू रुप से चलाते थे। ये अपनी जातीय पहचान भी संघों के माध्यम से बनाए रखते थे। १८ वीं और १९ वीं शताब्दी में इनका बॉम्बे में बस जाना अनेक प्रकार की चुनौतियों का कारण बना। बॉम्बे शहर की आधुनिकता में उनकी ग्रामीण पहचान पीछे रह गई। इन समुदायों के मुखियाओं की ताकत कानूनी नियमों के कारण और भी कम हो गई और अपने समुदाय के लोगों पर इनका नियन्त्रण कम होने लगा परन्तु इनके कारण इन समुदायों में अपनी अस्मिता के प्रति जागरूकता बढने लगी। ये किसी भी समस्या का सामना करने के लिए अपने समाज को पुनर्गठित करने लगे।

इसी सदंर्भ में १८ वीं शताब्दी से पारसी पंचायत को समझा जा सकता है पारसियों के अधिक आगमन से बॉम्बे की सरकार पंचायत को शिकायत करती थी कि कुछ पारसी अपने समाज के नियमों का उल्लघंन कर रहे है। यद्यपि पचांयत नियमों को पुन: बदल सकती थी परन्तु पचांयत का पुनर्गठन मुश्किल था। सदस्यों के मरने के बाद उनके बेटों को सदस्यता मिल जाती जो बहुत बार सही नहीं होता था। पचांयत सम्भ्रान्त लोगों के नियन्त्रण में थी और बडे व्यापारिक परिवार इसे चलाते थे। १८३७ में एक सम्भ्रात बामाजी होरमास जी ने सुप्रीम कोर्ट के जज से विमर्श करने गया कि पचांयत को कैसे मजबूत किया जाए। कुछ सदस्यों ने गवर्नर जनरल को भी याचिका दी कि उनके पारम्परिक नियम कमजोर हो गए है और सरकार उन्हें मजबूत करने में सहायता करें।

परन्तु सरकार कुछ ना कर सकी और पारसियों के बीच शिक्षा व गुजराती प्रिंटिंग प्रैस के माध्यम से और कमजोर हो गयी। १८४४–४५ मानक जी खरदेश जी ने, जो कि बहुत ही सम्भ्रान्त पचांयत के सदस्य थें, बॉम्बे टाइम्स में एक लेख छापा। इसमें उन्होनें कुछ सदस्यों की गलतियों को उजागर किया। आरोप सदस्यों के दो विवाह, अवैध सन्तानों तथा व्यापार में पारदर्शिता के थे। इससे पचांयत की गरिमा और कम हो गई और समाज व पत्रकारिता के परिसर में उन्हें कमजोर तथा आदिम समझा जाने लगा।

क्यूँकि पारसियों का कोई दैविक नियम पचांयत पर लागू नहीं था इसलिए पचांयत बंदोबस्त

के आधार पर चलती थी। बम्बई में सुप्रीम कोर्ट की स्थापना के बाद असन्तुष्ट पारसी पचांयत की जगह कोर्ट से कानूनी सहायता ले सकते थे। समस्या थी कि कोर्ट के पास पारसियों के उत्तराधिकार सम्बन्धी नियम उपलब्ध नहीं थे। अत: कोर्ट सिविल लॉ का इस्तेमाल करते थे। अत: अब मृतक की सम्पत्ति का १/३ हिस्सा उसकी विधवा व बाकी सारी संतानों में समान बाँटा जाने लगा। पारसियों ने इसे स्थायी उपाय नहीं माना क्योंकि बेटे व बेटियों के अधिकार समाज में समान नहीं थे। विवाह और तलाक में भी पारसी पचांयत अपने निर्णय नहीं लगा पा रही थी।

१८५० के दशक में पारसी समुदाय ने एलफिन्स्टोन कॉलेज के स्नातकों से पारसी धार्मिक व सास्कृतिक शोध करवाए। नौरोजी फरदून जी अपने पारसी समुदाय पर मिशनरी के हस्तक्षेप के सख्त खिलाफ थे तथा वे पारसी गरिमा पर लिखने वाले लेखको में नाम प्राप्त कर रहे थे। पारसियों पर शोध को वे यूरोपियन के हाथ में नहीं देना चाहते थे। अत: प्राचीन ईरानी साहित्य पर गंभीर शोध आरम्भ हुए। १८५५ में पारसी लॉ एसोसियशन बनाई गई। इसका काम पारसियों के लिए कानून को परिभाषित करना था। फिर एक पारसी संसद आयोजित की गई परन्तु इसमें भी सम्पत्ति व सम्मान को प्राथमिकता दी गई। उत्तराधिकार व सम्पत्ति के बँटवारे के नए नियम बनाए गए जो कि पारसी लोगों के समकालीन नियमों से भिन्न थे। इन नियमों को लागू करने के लिए एक ट्रिब्यूनल जो कि पचांयत जैसी ही थी, बनाया गया। इसके १२ सदस्य पाँच साल के लिए नियुक्त होने थे। इसके निर्णय को कानूनी वैधता दी गई। इस प्रकार बुद्धिजीवी पारसियों ने पंचायत को पूर्णत समाप्त करने की कोशिश की। १८६० में उन्होनें धोषणा की कि पारसी पंचायत नाम की संस्था अब नहीं है। परन्तु इन ट्रिब्यूनल्य की कार्यकारिता में कमी के बाद पंचायतों का पुर्नगठन करने की बात उठी। इसके बड़े–बड़े सम्भ्रान्त पारसियों ने हस्ताक्षर किए। हाँलाकि पचांयत को अब कोर्ट की अपील का सामना करना पड़ सकता था। फिर से शादी व तलाक के नियम बने और फिर पचांयत पर आरोप लगने लगे।

सुधारवादी पारसियों के समाचार पत्र तेंज हवजिंत में आलोचना छपी। काउंसिल ने १८६५ में पचांयत को रद्द करके पारसी में ट्रिमोनियन कोर्ट गठित की। ये कोर्ट तीनों प्रेसिडेंसी शहरों में (कलकत्ता, मद्रास, बाम्बे) में भी बनी तथा आवश्यकता के अनुसार डिस्ट्रिक्ट में भी खोली गई।[१२] इनमें एक हाई कोर्ट जज की अध्यक्षता में पारसी प्रतिनिधि जीवन भर के लिए नियुक्त किए गए परन्तु इससे भी समस्याओं का अन्त नहीं हुआ। सरकार ने इसमें २० प्रतिनिधि निश्चित किए परन्तु ये सभी सम्भ्रान्त थे और पारसी बुद्विजीवियों को एक भी सीट नहीं दी गई। Rast-Goftar अखबार ने चेतावनी दी थी कि कोर्ट पुरानी पचांयत ही बन जाएगी।

१८४० में पारसी पचांयत ने ऐसे अनेक सस्थान खोले जो पारसियों को शहरी जीवन की समस्याओं सें छुटकारा दिलाएँ परन्तु इन सभी की कार्यकारिणी समितियों में पचांयत के जैसे ही नियम बनाए गए। ये शिक्षा के प्रति सजग सस्थान थे। अपने व्यापारिक पतन को देखते हुए ये शिक्षा में आगे होकर अपने को सम्मानित बनाना एक उपाय था। सरकारी आँकडों में मैट्रिक ग्रेजुएट व सरकारी नौकरी में पारसियों की संख्या बढती गई। जमशेद जी जीजा भाई ने गरीब पारसियों की शिक्षा के लिए पारसी बेनोवेलेन्ट सस्था बनाई क्यूँकि गुजरात के पारसी जुलाहों का व्यवसाय नष्ट हो गया था। ये सस्था १२ लोगों के चयन से चलती थी जिसमें पुरानी पचांयत के सदस्य थे। धीरे–धीरे ये सस्था पुरानी पचांयत के अन्य कार्यो को भी अपने दायरें में लाने लगी तथा विवाह सम्बन्धी मामले देखने लगी। इसके पाँच सदस्य ट्रस्टी होने के नाते अपना प्रभाव दिखाते थे। बाद मेंइसे पारसी चैरिटी फंड के नाम से जाना जाने लगा। ये गरीबों तथा Towers of silence को देखते थे।

सम्भ्रान्त पारसी मालाबारी पारसियों के भविष्य को लेकर चिन्तित थे। उनका विचार था कि

बॉम्बे के हिन्दू व मुसलमानों के कारण उनकी प्रतिष्ठा कम होने लगी है।[१४] उन्होंने लिखा की फंड का सदुपयोग नहीं हो रहा था जबकि हिन्दू/मुस्लिम समुदाय के नेता अपने समुदाय का विकास कर रहे थे। धीरे–धीरे पारसी स्कूल खोले गए परन्तु मालाबारी को लगता था कि पारसियों का बंगाली व मराठा हिन्दूओं की तरह कोई कॉलेज, कला विद्यालय या बिज़नेस स्कूल नहीं था। मालाबारी के इन विचारों से पता चलता है कि वे अपने समुदाय के प्रति सजग थे।

फिर अन्य संस्थाएँ पारसियों को ईरान में शिक्षा, वृद्धों को सहायता, पूजा के स्थलों की मरम्मत आदि के लिए फंड देने लगीं परन्तु बॉम्बे में पारसियों को लगा कि अपनी पंचायत पारसियों को सरकार से तथा अन्य समुदायों से सुरक्षित रखने के लिए जरूरी थी। जमशेद जी जीजा भाई ने अपने सम्पर्क सूत्रों से लाभ उठा कर प्रयास किए पर उनका पुत्र निजी लाभों को ही देखता था। पंचायत पुनः शक्तिशाली नहीं हो पाई। १८७३ में पारसियों के Tower of Silence (कब्रगाह) के पास कुछ लोगों के लिए कोई पंचायत नहीं थी।[१५] पंचायत के बाद जो संस्थाएं बनीं थीं उनसे उम्मीद की गई।

द्वितीय जमशेद जी के भाई सोराब जी जमशेद जी ने पारसी अतीत को पुनः जीवित करने के लिए लेख लिखे। अन्य सम्भ्रात लोगों की सहायता से ५००० पारसियों के हस्ताक्षर करा के इन्होंने एक याचिका बनाई जिसे सार्वजनिक करके पारसियों पर होने वाले अन्याय को उभारा। इस आंदोलन में पाँच सम्भ्रान्त पारसी वैचारिक मतभेद से अलग हुए तथा समाचार पत्रों में इनकी फूट को सार्वजनिक किया। फिर भी २००० पारसियों ने Tower of Silence के केस के विरोध में प्रदर्शन किया। १८७४ में पारसियों व मुस्लिम के दंगो में ठवउइंल के गवर्नर ने पारसियों को दंगें के लिए जिम्मेदार ठहराया। फिरोजशाह मेहता ने पारसियों की मीटिंग बुलानी चाही पर आन्तरिक झगडों के कारण ना हो सकी।[१६]

फिर भी स्पष्ट है कि पारसी अपनी आस्मिता के लिए किसी एक जाने–माने व्यक्ति का नेतृत्व चाहते थे जो उनको संगठित रख सकें। पुरानी पचांयत का यही कार्य था। जीजा भाई परिवार ने इसका दायित्व संभाला था। परन्तु पुराने पारसी परिवारों ने समर्थन नहीं दिया। सारे बुद्विजीवी भी फिरोजशाह मेहता के नेतृत्व में नहीं आए। फिर भी मेहता ने एक मीटिंग बुलाई इसमें एस. एस. बंगााली ने सुझाव रखा कि जमशेद जी के परिवार के सदस्यों को पारसी नेता चुना जाए। ये प्रस्ताव पारित हो गया। अब यह सोचा गया कि पारसी समुदाय भारत की जनसंख्या में विलीन न हो जाए।

इस विवरण से स्पष्ट होता है कि बॉम्बे के अनेक समुदाय अपनी जातीय व धार्मिक आस्मिता को बनाए रखने के लिए सधंर्षरत रहे। लेकिन इस काल में साम्प्रदायिकता को केवल हिन्दू–मुस्लिम के सदंर्भ में ही समझा गया।

संदर्भ

१. पाण्डे, ज्ञानेन्द्र. (१९९०) 'द कंस्ट्रक्शन ऑफ कम्यूनलिज़्म इन कोलोनियल नार्थ इंडिया, दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, पृ.सं. २०१–३२. और भी देखें, थापर, रोमिला. 'इमेजिन्ड रिलीजियस कम्युनिटीज़', मॉर्डन एशियन स्टडीज, २३ (२), पृ.सं. २०९–२३
२. चट्टोपाध्याय, बी.डी. (१९९८), रिप्रेजेन्टिंग द अदर? संस्कृत सोर्सिस एंड द मुस्लिम्स, अप टू फोर्टीन्थ सेन्चुरी, नई दिल्ली, मनोहर पब्लिशर्स.
३. शर्मा, सन्ध्या (२०१२). रिस्पोंसिस टु रिलीजन एंड पोलिटिक्स : रीति–काल पोयट्री, C.१५५०.१८५०, अध्याय छह राज़िउद्दीन अकील तथा कौशिक रॉय सम्पादित पुस्तक वारफेयर, रिलीजन एंड सोसायटी इन इंडियन हिस्ट्री, नई दिल्ली, मनोहर पब्लिशर्स, पृ.सं. ११७–९८.

४. मिल, जे.एस. हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया, wdl.org/item/१७५३८, पृ.सं. १००–०१
५. सावरकर, विनायक दामोदर, १९६९ (प्रथम संस्करण), हिन्दूत्व: हू इज़ ए हिन्दू, बॉम्बे : वीर सावरकर प्रकाशन, ई बुक, आर्काइव, ओ.जी.
६. ग्रीन, नील (२०११) बॉम्बे इस्लाम : द रिलीजियस इकोनोमी ऑफ द वेस्ट इंडियन नेशन, १८४०–१९१५, न्यू यॉर्क : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैस, पृ.सं. ५०–५१
७. वही, पृ.सं. ५७
८. वही, पृ.सं. ६४–६६
९. डॉबिन, क्रिस्टीन, द पारसी पंचायत इन बॉम्बे सिटी इन द नाइन्टीन्थ सेंचुरी, मॉडर्न एशियन स्टडीज़ वाल्यूम ४, न. २, १९७०, पृ.सं. १४९–६४
१०. वही, पृ.सं. १५१
११. वही, पृ.सं. १५२
१२. वही, पृ.सं. १५५–५६
१३. वही, पृ.सं. १५७–५८
१४. वही

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www.aiirjournal.com

दिल्ली ऊंचा सुनती है - व्यवस्थाओं का सत्य

प्रो. डॉ किशोर माणिकराव पवार
kishorpawar2345@gmail.com

सारांश –

'दिल्ली ऊंचा सुनती है' यह कुसुम कुमार का लिखा नाटक है | इसकी रचना दो अंकों में हुई है | दोनों अंकों में प्रत्येकी पांच - पांच दृश्य हैं | **" कुसुम कुमार का 'दिल्ली ऊंचा सुनती है' यथार्थवादी मंचीय नाटक है | संरचनात्मक दृष्टि से यह नाटक द्विअंकी है | पहले अंक में पांच दृश्य और दूसरे अंक में पांच दृश्य हैं | इसमें घर का सामान्य दृश्य, पेंशन ऑफिस का दृश्य, अस्पताल का दृश्य, जैसे सामान्य दृश्य टेबल, कुर्सी और कुछ फाइलों से चलाने का निर्देश नाटककार ने दिया है | कम साधन में भी मंच सज्जा व्यवस्थित रूप से हो सकती है | नाटककार ने दृश्य के प्रारंभ में दृश्य परिवर्तन के समय रंग संकेत दिए हैं | नाटककार की ध्वनि योजना प्रसंगानुकूल है | जिसका उपयोग नाटक में हर जगह हुआ है | नाटक का कथानक दर्शक को बिना किसी व्यवधान के सीधे मानसिक एवं वैचारिक स्तर पर प्रभावित करने वाला है | कथ्य के स्तर पर नाटक व्यंग्य के माध्यम से दर्शक की मानसिक संवेदना और अनुभूति को जगाने में सफल रहा है |"**1 एक साधारण नोकरी करने वाला कर्मचारी सेवानिवृति के उपरांत साधारण जीवन यापन करने का इच्छुक है | परंतु हमारी विभिन्न व्यवस्थाएं उसे जीवन यापन करने में बाधाएं उत्पन्न करती हैं | विशेषत: कार्यालयीन व्यवस्था में रिश्वत के रोग से गतिहीनता आयी है | कार्यालयीन अव्यवस्था, गतिहीनता, गैर - जिम्मेदारी, असहकारिता इत्यादि से वह अक्षम बनी है | परिणामस्वरूप जनसाधारण अपने एक अपेक्षित अधिकार की पेंशन प्राप्त नहीं कर पाता | अत: अर्थाभाव, मानसिक यंत्रणा तथा उम्मीद की प्रताड़ना से सेवानिवृत्त कर्मचारी देखते - देखते मरणप्राय होकर मरणप्राप्त होता है | विडंबना यह कि पेंशन की निश्चिति मरणोपरांत होती है, परंतु उसकी बहाली नहीं होती | उसके परिजन भी उसी त्रासदी व अभाव को भोगने - झेलने को विवश हो जाते हैं |

शब्द संकेत – अ) **दिल्ली** यह शब्द संपन्नता का, कार्यालयीन व्यवस्था का प्रतीक है | कार्यालय व्यवस्था से तात्पर्य है - कार्यालय, उच्चतर कार्यालय तथा मंत्रालय आदि | आ) ऊंचा सुनना यह व्यवस्था के बहरे बन जाने की स्थिति का परिचायक है, जो जनसाधारण को विपन्न बनाकर स्वयं संपन्न होती रहती है |

इ) **प्रश्नावली** यह शब्द नाटक में आया है, इसका संबंध रामायण की रामशलाका प्रश्नावली से है | यह एक कोष्ठक होता है, जिसके किसी आंकड़े पर ऊंगली रख कर मन के प्रश्न का उत्तर देखने की सुविधा होती है | ऐसे उत्तर-पूर्व से दिए होते हैं; जो सुविधा मात्र होते हैं | जिससे प्रश्न व समस्याग्रसित व्यक्ति मन का आभासी उत्तर पढता है; पाता नहीं |

संशोधन पद्धति - प्रस्तुत विषय पर शोध -आलेख हेतु हमने विश्लेषण, आलोचना पद्धति का आधार लिया है | जिसमें मूल नाट्यकृति, संदर्भ पुस्तकें व ई सन्दर्भों का उपयोग किया है |

प्रस्तावना –

हमारे सामाजिक जीवन की कई व्यवस्थाएं हमारी सुविधा व सुचारू जीवन के लिए बनाई गई हैं | जैसे - परिवार व्यवस्था, सुरक्षा के लिए पुलिस तथा कानून व्यवस्था, न्याय के लिए विधि - अदालत की व्यवस्था, आरोग्य व्यवस्था, विवाह व्यवस्था, विभिन्न कार्यालयों के लिए कार्य व्यवस्था; जिसे कार्यपालिका कहा जाता है | सभी प्रकार की समस्याओं के निराकरण हेतु इनका निर्माण किया हुआ है | समाज की अधिकतर समस्याएं तो केवल जनसाधारण व निम्न वर्ग की होती हैं, यह कहना साहस का होगा | परंतु लगभग यही सामाजिक सत्य है | वास्तव में समस्याएं जनसाधारण व निम्न

मध्यवर्ग की ही होती हैं | समस्याओं के समाधान तो उससे अगले वर्गों के पास उपलब्ध होते हैं। अतः उनके पास समस्याएं नहीं; समाधान सहज, सुलभ होते हैं | **'दिल्ली ऊंचा सुनती है'** यह नाटक भी इसी साधारण जन की, निम्नवर्ग की समस्याओं को चित्रित करता है | माधोसिंह सेवानिवृत्त होने के उपरांत दिल्ली में अपना घर चलाने की स्थिति से परिचित हैं | उनका दिल्ली में रहना सेवारत स्थिति में विवशता है | परंतु दिल्ली के आसपास निवास के लिए एक साधारण गांव में आना उनकी आर्थिक विवशता है | पुत्री नीति के विवाह उपरांत उसके पति द्वारा उसे परित्यक्ता स्थिति की बहाली से उसका मानसिक असंतुलन व बीमार होना इस परिवार की चिंता है | "माधोसिंह की बेटी नीति परित्यक्ता है | वह सुन्दर है किन्तु अधिकांश समय अस्वस्थ, उदास रहती है | उसकी अस्वस्थता मनोवैज्ञानिक है; मानसिक है |"2

माधोसिंह अपनी अप्राप्त पेंशन की प्राप्ति हेतु पत्राचार करते हैं, प्रत्यक्ष कार्यालय जाकर मिलते हैं | परंतु पेंशन कार्यालय में अभिलेख के अनुसार वे मृत हैं | अत: उन्हें पेंशन बहाली नहीं हुई है | इस गलत अभिलेख में माधोसिंह की क्या गलती है ? जिसकी गलती है वह सुधार करता नहीं है | निश्चित ही जिसे आवश्यकता है वह गलती सुधारेगा | अतः माधोसिंह के जीवित होने का प्रमाण डॉक्टर से प्रमाण पत्र लाकर करें | उनके परिचित डॉक्टर नेकी तो दिखाते हैं; पर सहायता नहीं करते | एक जीवित को जीवित होने का प्रमाण पत्र दिया जाना; क्या संकट है ?

माधोसिंह सरकारी अस्पताल के चक्कर लगाते हैं | वहां भी वर्तमान समाज की आपाधापी, वसीले बाजी के परिणाम स्वरूप अपयश हाथ लगता है | नए घर मालिक मगनलाल संवेदित होकर माधोसिंह की सहायता के लिए अपना पहलवानी चोला धारण करते हैं | परंतु उनकी साख की भी कोई पूछ नहीं होती | अतः मंत्री से भी काम नहीं बन पाता, दोनों उदास, निराश लौटते हैं |

स्थिति बद से बदतर होते पुत्री नीति आत्मघात कर लेती है | थके, हारे माधोसिंह बिना पेंशन के ही सिधार जाते हैं | पेंशन ऑर्डर की राह देखते-देखते ना लौटने की राह चल देते हैं |

संभवतः पेंशन निश्चित हुई है, परंतु पेंशन धारक अब मृत होने से उसकी बहाली नहीं होती | पेंशन वाली डाक वापस जाती है | विडम्बना व भाव की स्थिति में मृतक की पत्नी कमला प्रतीक्षित व बाकी है | इस प्रकार व्यवस्था की अव्यवस्था जनसाधारण के जीवन को मरणप्राय करती हुई, मर्मान्तक पीड़ा देती है |

नाटककार का परिचय - कुसुम कुमार का जन्म 5 अगस्त 1939 को पुरानी दिल्ली में हुआ | "कुसुम कुमार का जन्म दिल्ली में एक क्षत्रीय परिवार में हुआ | पारिवारिक वातावरण सनातनी था | कुसुम कुमार की माध्यमिक शिक्षा दिल्ली में हुई | पंजाब विश्वविद्यालय से एम. ए., पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की | कुछ वर्ष दिल्ली के महिला महाविद्यालय में प्राध्यापक रूप में कार्यरत भी रहीं हैं |"3

कुसुम कुमार नाटककार के रूप में भले ही परिचित हों, उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं में रचना कर्म किया है | जैसे " हीरामन हाई स्कूल, पूर्वी द्वार, पर्दा बाडी, मीठी नीम (उपन्यास) अभी रहेंगे, तृष्णांकित, तीन अपराध, छत्र, रास्ते भर (कविता) सुनो शेफाली, दिल्ली ऊंचा सुनती है, रावणलीला, ओम क्रांति क्रांति, पवन चतुर्वेदी की डायरी, प्रश्नकाल (नाटक) खाबगाह, मित्र मंडली, विधिवत प्रजा, चूहे, मादा मिट्टी, वह रंग शाम, कोरम, राजप्रमुख (एकांकी एवं नुक्कड़ नाटक) हिंदी नाट्य चिंतन (समीक्षा)...." उनकी रचनाओं पर टेलीफिल्में बनी, जो इस प्रकार हैं - "सुनो शेफाली (निर्देशन : विमल इस्सर), ख्वाबगाह (निर्देशन : योग टंडन) संध्याछाया(निर्देशन : नादिरा बब्बर)"5 "आप एक श्रेष्ठ चित्रकार भी हैं | आपके चित्रों की सात एकल प्रदर्शनियाँ हुई हैं |...|...|...| साहित्यिक

योगदान के लिए आपको पुरस्कार - सम्मान प्राप्त हैं; जो इस प्रकार हैं - 1982 - 82 में साहित्यिक कृति पुरस्कार दिल्ली ऊंचा सुनती है एवं रावणलीला नाटकों के लिए 1987 - 88 ईसवी में, हीरामन हाईस्कूल उपन्यास के लिए साहित्यिक कृति पुरस्कार, हिंदी अकादमी पुरस्कार, साहित्यिक योगदान सम्मान 1997 -98, कल्चरल अकादमी ऑफ राजस्थान द्वारा विशिष्ठ नाट्यकार सम्मान 2009, नटसम्राट पुरस्कार 2011"6

"कुसुम कुमार का हिंदी महिला नाटककारों में ही महत्वपूर्ण नाम नहीं है तो हिंदी के उन गिने-चुने नाटक कारों में महत्वपूर्ण हैं जिनके नाटकों का कथ्य एवं शिल्प दोनों ने निर्देशकों और नाटक के प्रेमियों को आकृष्ठ किया है | उन्होंने कुल 26 पुस्तकें लिखी हैं | कुसुम कुमार ने अनेक मौलिक ग्रंथों की रचना की है | उनकी 'हिंदी नाट्य चिंतन' महत्वपूर्ण कृति है | ...| उन्होंने अनेक कविताओं एवं उपन्यासों की भी रचना की है | 'अभी रहेंगे', 'तृष्णांकित', 'रास्ते भर जंगल',' तीन अपराध' जैसी कविताएं प्रकाशित हुई हैं | उनके 'हीरामन हायस्कूल', 'पूर्वी द्वार', 'पर्दा बाड़ी' जैसे उपन्यास भी प्रकाशित है |"7

" कुसुम कुमार ने मराठी नाटकों का हिंदी में सफल अनुवाद भी प्रस्तुत किया है | वसंत कानेटकर, जयवंत दलवी, विजय तेंदुलकर जैसे प्रसिद्ध नाटककारों के नाटक उन्होंने हिंदी में अनूदित किए हैं | इतना ही नहीं तो उन्होंने अनेक एकांकी, नुक्कड़ नाटक और लघु नाटकों की भी रचना की है |

हिंदी महिला नाटककारों में कुसुम कुमार का नाटक के विविध क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान रहा है| वे केवल नाटककार ही नहीं तो उत्कृष्ठ निर्देशक, अनुवादक और नाट्य समीक्षक भी हैं | उनकी अनेक रचनाओं का मराठी, पंजाबी, डोगरी तथा अंग्रेजी भाषा में अनुवाद हुआ है | ..."8

<u>शीर्षक की सार्थकता</u> - दैनंदिन जीवन में, अध्ययन में हम कई मुहावरें व वाक्प्रचारों का प्रयोग करते हैं | जैसे - कान पर जूं तक न रेंगना, आना कानी करना, अनदेखी करना आदि | यह पढ़ते व सुनते हुए इनका प्रभाव इतना अनुभव नहीं होता है | जब यह प्रत्यक्ष हम पर प्रयुक्त होते हैं, तब हम सही अर्थों में इन्हें अनुभव करते हैं | इसी प्रकार प्रस्तुत नाटक का शीर्षक देखा जा सकता है | 'दिल्ली ऊंचा सुनती है' नाटक में 'दिल्ली' यह व्यवस्था का प्रतीकार्थ है | 'ऊंचा सुनना' यह बहरा होना, दुर्लक्ष करना, महत्व न देना, कोई फर्क न पड़ना, इन अर्थों में है | सेवानिवृत्त कर्मचारी की पेंशन छह माह तक आवंटित ना होना यह उस कर्मचारी के लिए, उसके परिवार के लिए चिंता का, अर्थ अभाव का विषय निश्चित ही है | परंतु व्यवस्था के लिए उसकी स्थिति, परिस्थिति से कोई लेना देना नहीं हो सकता ? यह प्रश्न आज के दौर में अप्रासंगिक है | वर्तमान में यही बड़ी विडंबना है कि मानव को, उसकी समस्याओं को, उसके प्रश्नों, उसके अधिकारों को कोई विधिवत, अधिकार तथा नैसर्गिक व मानवीय धरातल पर कोई नहीं विचारता | निचली व्यवस्था से ऊपर की व्यवस्था तक सारा कार्यक्रम इसी गैर जिम्मेदारी व अनदेखी से चलता है | कोई विषय की समस्या की गंभीरता पर ध्यान नहीं देता, कोई खुली आंखों से नहीं देखता | अतः समस्या का समाधान सहज होकर भी सुलभ नहीं हो पाता | नाटक के पात्र माधो सिंह के और उनके परिवार के साथ भी यही अन्याय होता है | सेवानिवृत्ति के उपरांत उन्हें छह माह तक अपनी अधिकार की पेंशन नहीं मिलती | उसकी बहाली के लिए माधो सिंह चिट्ठियां लिखते रहते हैं | कार्यालय के चक्कर बार - बार लगाते हैं | घर में आर्थिक स्थिति विवंचना बनी है | अपनी समस्या, दवाइयों का खर्च व पेंशन का मिलना आदि समस्याओं के परिणामस्वरूप माधोसिंह की बेटी आत्मघात कर लेती है | समय के चलते माधोसिंह भी सिधार जाते हैं | पेंशन की बहाली

अब भी नहीं हुई है | इस प्रकार व्यवस्था का बिगड़ा चलन अपनी बेफिक्री, अपनी मंद गति से वह एक बहरी, न सुनने वाली अव्यवस्था बन गई है | नाटक के कथ्य हेतु यह शीर्षक सर्वथा उपयुक्त व सार्थक है, कथावस्तु के साथ संगति बैठाता हुआ है | अतः निश्चित ही 'दिल्ली ऊंचा सुनती है' यह शीर्षक सर्वथा अपनी सार्थकता ध्वनित करता है |

कथानक 'दिल्ली ऊंचा सुनती है' यह एक सामाजिक समस्याओं वाला नाटक है | यह नाटक दो अंकों में विभाजित व प्रत्येक अंक में पांच - पांच दृश्यों से हमारे सामने अपने कथ्य को कथानक द्वारा प्रस्तुत करता है | इसका कथानक पहले अंक के 52 व दूसरे अंक के 28 पृष्ठों में है |

पहले अंक में एक देहात के घर परिवार व आंगन का दृश्य है | माधोसिंह का परिवार दिल्ली से अलीगढ़ में निवास के लिए आया है | सेवानिवृत्ति के बाद दिल्ली में रहना उनके लिए कोई आवश्यक नहीं, ना ही अब दिल्ली शहर में रहने का खर्च अपनी आय में वे उठा सकेंगे | इस स्थान व परिवेश में रहना माधोसिंह की पत्नी कमला के लिए सहज स्वीकार्य नहीं है | उनकी बेटी नीति 25 वर्षीय है | उसका विवाह हुआ है, परंतु वह परित्यक्त है |

घर का मालिक मगनलाल देहाती मानवीयता वाला है, जो उन्हें अपना घर किराए पर तो देता है; परन्तु किराए की मांग नहीं करता | उल्टे उन्हें सहकार्य करता है | किराए की चिंता न करने की बात कहता है | मगनलाल समाचार पत्रों में छपे समाचारों को अपनी विशेषता मुद्रा में पढता है | पत्नी कमला को माधोसिंह नई जगह की अच्छाइयां समझाते हैं | माधोसिंह अपने परिवार से मगनलाल को परिचित करवाते हैं | वे अपनी स्थिति से मगनलाल को अवगत कराते हैं | माधोसिंह की चिंताओं मगनलाल अपना बताते हैं |

कमला पेंशन कार्यालय में सातवीं चिट्ठी लिख भेजने को माधोसिंह से कहती हैं | एक बार दिल्ली हो आने का आग्रह करती हैं | माधोसिंह स्वीकार कर फिर दिल्ली के कार्यालय निकलते हैं | मगनलाल नीति को बातों से खुश करने का प्रयत्न करते हैं |

दूसरे दृश्य में सरकारी कार्यालय का क्रियाकलाप है | माधोसिंह अपने रुके काम को जल्द करवाने की बात करते हैं | परंतु सरकारी कार्यालय का काम विचित्र नियम - ढंग से चलने का साक्षात्कार यहां होता है | कार्यालय में महिलाओं से फूहड़पण की बातें होती हैं | वहां अलका नामक महिला कर्मचारी है | वह माधोसिंह को पहचान लेती है | वह नीति की सहेली है | अतः वह माधोसिंह के अटके काम को सुलझाने में मदद करती है | रिकॉर्ड से पता चलता है कि किसी माधोसिंह कोठारी को पेंशन बाकायदा जाती रही है | और उनके रिकॉर्ड में माधोसिंह की डेथ हो चुकी है | रिकॉर्ड की गलती सुधारने के लिए माधोसिंह से अर्जी लिखवाई जाती है, जिसमें उनके जीवित होने के सारे प्रमाण दिलाने की बात स्वीकार करवा ली जाती है | अलका के कारण काम को ढंग से व गंभीरता से किया जाने लगता है | माधोसिंह का रिकॉर्ड धूल भरी फाईलों को झटककर देखना आरंभ होता है |

माधोसिंह अपने 20 साल से परिचित डॉक्टर से अपने जीवित होने का प्रमाण पत्र लेने पहुंचते हैं | परंतु किसी पेचीदगी में पडने के डर, किसी बखेड़े के डर से वे प्रमाण पत्र नहीं देते | एक चिट्ठी वे सरकारी अस्पताल के डॉक्टर के लिए देते हैं, जो उनकी मदद करेगा | माधोसिंह सरकारी अस्पताल जाते हैं | माधोसिंह जल्दी करते हैं, परंतु कर्मचारी उन्हें लाइन में सबसे पीछे खड़ा कर देता है | कितनी ही विनती के बाद वह डॉक्टर से एक मिनट मिलने की सहूलियत नहीं देता | पंद्रह दिन बाद भी डाकखाने से प्रमाणपत्र नहीं मिला है | उन्हें दिल्ली का एक और चक्कर काटना पड़ेगा | आज उनके घर का चुल्हा

नहीं जला है | "लगता है, जैसे पूरे घर की साँस बंद है |...|...| मरता और भला कैसे है आदमी ?"9

फिर से माधोसिंह सरकारी अस्पताल पहुंचते हैं| अपने लिए जीवित प्रमाणपत्र प्राप्त करने अस्पताल में केस पेपर को ऊपर - नीचे करने की कला का भंडाफोड़ एक युवक करता है | परंतु वही गड़बड़ी आगे व्यवस्था में प्रत्यक्ष दिखाई देती है| जिस व्यक्ति का परचा नीचे रख दिया गया था, उसी को डॉक्टर बुलाते हैं| लेडी डॉक्टर एक रुग्ण की जांच कर फोन पर बातें करती रहती हैं| माधोसिंह लाइन के अंत में हैं | उन तक आते-आते लंच टाइम होता है| उन्हें कल फिर आने को कहा जाता है | बदली होने से अस्पताल में दो हफ्ते से डॉक्टर नहीं आए हैं| माधोसिंह फिर भी लाइन में लगे हैं | लोग रोज लाइन लगाकर दिन भर रुकते हैं, लौट जाते हैं | अभी नए डॉक्टर की नियुक्ति नहीं हुई है | माधोसिंह का काम बनने - बनाने की आश्वासकता अस्पताल का कर्मचारी दिखाता है | तब व्यवस्था का सत्य माधोसिंह बताते हैं कि क्षमतावान अक्षम हैं |

अंततः माधोसिंह का प्रमाणपत्र मिल जाता है | परंतु माधोसिंह के स्पेलिंग गलत रूप में माधोसिंह लिख कर आता है | अत: माधोसिंह उदास, निराश होते हैं | मगनलाल उस गलती को सुधारने के लिए खुद दिल्ली जाने को तैयार हैं| नई अर्जी व प्राप्त प्रमाणपत्र मगनलाल माधोसिंह से ले लेते हैं |

देश को समाजवादी, धर्म-निरपेक्ष, वर्गहीन बनाए जाने की नेताओं की बातें व वास्तव पर माधोसिंह व मगनलाल के बीच चर्चा होती है | लालफीता शाही को महादेव भी न बदल पाने की बात माधोसिंह करते हैं| सब तरफ बनी दलदल में आम आदमी का सांस लेना भी मुश्किल है |

डाक से माधोसिंह का प्रमाणपत्र आता है | वे चिट्ठी वह लिख कर अपने सारे पैसे बटोरने का आनंद व्यक्त करते हैं| अब वे मथुरा, वृंदावन, आगरा जाएंगे |

माधोसिंह पे एंड अकाउंट्स ऑफिस जाते हैं| वहां उनकी फाइल पर इंक्वायरी होगी| ऑफिस का वातावरण अंग्रेजी भाषा से दम घुटाऊं बन पड़ता है| माधोसिंह को अंदाजा नहीं था कि यहां भी किसी कारण पैसे रुक सकते हैं | जवाब में उन्हें अधिकारी असली इंक्वायरी करने की, पैसों का मामला होने की व सभी तरह के क्लिअरन्स यहीं पर जरूरी होने की तथा उनके केस पर हमदर्दी से विचार करने की, अपना फैसला जल्दी बताने की बात करते हैं | सारी बातों की, संवादों की कड़ी माधोसिंह के मस्तिष्क में लिए घर पहुंचते हैं | माधोसिंह को अंदेशा है कि उनका काम कभी नहीं होगा| यहां माधोसिंह गले में फांसी का फंदा डाल लेने की भावना व्यक्त करते हैं| व्यवस्था में बैठे बदमाशों को सबक सिखाने, पिता को दिए किसी पर हाथ न उठाने के प्रण तोड़ने का निर्णय मगनलाल कर लेते हैं| वह गृहमंत्री से काम सुलझाने, बनाने का विचार रखते हैं| माधोसिंह को लेकर मगनलाल अब गृह मंत्री के समक्ष है | गृहमंत्री कुलजीवन लाल अपनी व्यस्तता गिनाते हैं| अंततः फाइनेंस सेक्रेटरी से फोन पर बात करते हैं| कुछ दिन बाद माधोसिंह व मगनलाल घर लौटने पर उन्हें कमला रोती हुई बताती है कि आपके जाते ही नीति ने उसी रात कुछ खा लिया| माधोसिंह को इस समाचार से बड़ा आघात होता है| उन्हें मगनलाल समझाते हैं |

माधोसिंह व कमला को सहज बनाने का प्रयास मगनलाल करते रहते हैं| माधोसिंह के लिए पत्र आता है| "...? अभी तो एक और इंक्वायरी होनी है| अर्थ सचिव ने मामला निपटाने के लिए एक इन्वेस्टीगेशन ऑफिसर मुकर्रर कर दिया है|"10 साथ इसी प्रसंग में माधोसिंह की मृत्यु हो जाती है | अब पे एंड अकाउंट्स ऑफिस से माधोसिंह की रजिस्ट्री आती है| कमला आगे बढ़ती है | डाकिया माधोसिंह को बुलाने के लिए कहता है | धीमे व मृत स्वर में कमला बताती है, वे चार महीने पहले गुजर गए| कमला धीरे - धीरे भीतर लौटती है| यहां पर इस नाटक का कथानक समाप्त होता है |

'दिल्ली ऊंचा सुनाती है' नाटक में अभिव्यक्त समस्याएं : आरंभ में जैसे कहा गया है कि यह एक सामाजिक समस्या नाटक है | इसके कथ्य को व्यक्त करने में पारिवारिक, आर्थिक व कई सारी सामाजिक समस्याओं का आधार है |

अ) *परित्यक्ता समस्या* - हमारे समाज में परित्यक्ता यह एक गंभीर समस्या है | नाटक की पात्र नीति 25 वर्षीय विवाहित युवती है | पता नहीं उसके पति ने उसे किस कारण छोड़ा है | अतः युवती अपने मां - पिता के घर रहती है | नीति की बीमारी मानसिक है | पिता की आय अधिकतर उसके इलाज पर खर्च होती है | साल भर पिता की पेंशन नहीं मिलती | अतः पिता व परिवार पर बोझ बनने की स्थिति में वह आत्मघात कर लेती है |

आ) जनसाधारण की विवशता और गरीबी - सेवानिवृत्ति पश्चात् दिल्ली में रह पाना माधोसिंह को संभव नहीं है | अतः पत्नी की इच्छा के विरुद्ध वे एक कस्बे में रहने आते हैं | यहां आदत से अब सब ठीक होगा, यह विश्वास पत्नी को दिलाते हैं | "भीतर की खुशी का वास्ता न शहर से होता है गांव से कमला ! उसका वास्ता अपने हालात से होता है - हालात से !"11

वे दिल्ली से कस्बे आने में राहत अनुभव करते हैं | रोज घर से दफ्तर आना-जाना 20 मील की दूरी 36 साल तक तय करना, सुई की नोक से बिंधी जिंदगी उन्हें किसी काम की नहीं लगती | खुला आकाश, कच्चा फर्श, परिंदों की आवाज का आनंद अनुभव करते हुए वे स्थितियों से समझौता करते हैं |

स्थिति को स्वीकार कर कस्बे में नाखुशी से कमला रहती है | छह माह बाद पेंशन न मिलने से वे परेशान हैं | अतः वे पति से एक बार दिल्ली हो आने का आग्रह करती हैं | दिल्ली हो आने का अतिरिक्त खर्च सहने की बात वे रुकी पेंशन के बदले करती हैं |

साल भर कोशिशों के बाद भी पेंशन ना मिलने के दुख से बड़ा, दुख बिटिया के चले जाने से माधोसिह अनुभव करते हैं | नीति की मृत्यु पर मगनलाल कहते हैं, "... मौत से बढ़कर तो अकेली गरीबी बहुत है | ... अब बताइए, माधो भाई, मौत से बढ़कर बुरा और क्या होता है |"12 देर - अंधेर की भावना पर नाटककारने नीति के संवाद के माध्यम से कहा है, "... जो लोग देर सहते हैं वही अंधेर भी सहते हैं |... |"12

इ) व्यवस्था की अव्यवस्था - अपने अधिकार की पेंशन की समस्या, सात चिट्टियां लिखाने को विवश करती है | यह व्यवस्था अंग्रेजीयत वाली है; अतः अंग्रेजी भाषा करते मूडी अधिकारी, कर्मचारी जनसाधारण की सुनते - समझते नहीं | स्थिति यह की मूडी अधिकारी अपने कार्यालय में आए ना आए कौन पूछे ? सक्सेना नामक कर्मचारी कब आएगा कोई नहीं जानता | चिट्टियां के उत्तर एक दिन में न दे पाने का समर्थन व्यवस्था में इस प्रकार है, "सरकारी दफ्तर है यह बाबा, किसी महबूब का दिल नहीं जो सवाल भी उसी पल हो और जवाब भी उसी पल !"13

कार्यालय से हुई गलती की जिम्मेदारी कोई नहीं मानता | उसका सुधार जनसाधारण को ही करना पड़ता है, रिकॉर्ड में माधोसिंह की हुई मौत को जीवंत करें | स्थिति यह है कि केवल चिट्ठियां लिख कर, दिल्ली के चक्कर लगाकर सुनवाई की आस नहीं बंधेगी | क्योंकि व्यवस्था भ्रष्ट है | व्यवस्था का वास्तव माधोसिंह ने अनुभव कर लिया है | "एक बार मर कर फिर से जिंदा हो ना इतना आसान नहीं होता ... और फिर इस जमाने में सिर्फ सांस लेने का मतलब जिंदा रहना थोड़े ही है | पैसा चाहिए, पैसा ! पैसा आदमी को मारता है ! पैसा जिलाता है |"14

भगवान का फैसला भी यह व्यवस्था लाल फीते से न बांधकर रखे ऐसी स्थिति देश की है | व्यवस्था की कीचड वाली दलदल सूखने से रही | "अभी तो यहां सब एक - एक धिनौनी मिसाल कायम कर रहे हैं |"15

पेंशन बहाली में गलती हो सकती है परंतु वह सुधारणा जनसाधारण के लिए इतनी कठिन हो सकती है कि "लेकिन यह गलती तो यमराज के खाते में हुई गलती से भी दुखदाई है |"16 अंग्रेजी बोलने वाला कोई सक्षम अधिकारी ही जीवंत को जीवंत कह सकता है और ऐसे लोग अपनी अक्षमता दिखाते, जताते हैं | ऐसी गंदी व्यवस्था अपनी अक्षमता को समझने की कोशिश करने की बात लगातार करती है | बारह महिने के अनुभव को समझते हुए माधोसिंह क्रुद्ध शब्दों में अभिव्यक्ति देते हैं | "अंडरस्टूड ! आय हैव अंडरस्टूड एवरी सिचुएशन ! अंडरस्टूड दिस ब्लडी सिस्टम अंडरस्टूड ! नथिंग कैन बी डन विद दीज सिचुएशन... विद दिस सिस्टम ! ... |"17

ई) भ्रष्टाचार - देश में मंत्री से अधिकारी तक व्यवस्था की भ्रष्टता का सुधार महादेव भी न कर पाए | लेखा विभाग सभी का लेखा - जोखा रखने का दम भरता है, परंतु वही एक की पेंशन दूसरे को भेजता है और पेंशन के हकदार को मृत घोषित करता है | हकदार को उठाईगीर समझता है | छान - बीन कर फैसला बताना अपनी मर्जी समझते हैं | "है उन्हीं के बाप का राज है |" 18 भ्रष्टाचार में क्या अधिकारी, क्या मंत्री | अपनी मालिश तीन घंटे करवाने वाले देश के गृहमंत्री अपनी व्यस्तता देश जितनी बड़ी दिखाते हैं | साधारण मनुष्य का जीवन बड़ा मुश्किल होता है | नेता तो बड़े लोग होते हैं |

उ) रेकोर्ड की अविश्वसनीयता - प्रमाणपत्र से गलती में सुधार पर साधारण जन भगवान् का आभार करता है | यहाँ नाटककार जनसाधारण की विषन्न मानसिकता से उबरने का क्षणिक आनंद दर्शाते हैं | परन्तु यह आनंद उन्हें ईश्वरीय होने का अनुभव अर्थात् अविश्वसनीय है | रेकोर्ड में हुई मृत्यु मनो सचमुच थी | अब रेकोर्ड में सुधर होने पर वह जैसे जी उठने का अनुभव कर्ता है, "कमला ! तुम्हारा पति फिर से जी उठा - आओ, आकर देखो |"19 यहाँ माधोसिंह के आनंद का कोई ठिकाना नहीं रहता | परन्तु यह आनंद, हर्ष अधिक्ल समय तक नहीं रहता | पेंशन की साधारण- सी दुरुस्ती के लिए देश के गृहमंत्री तक असहायता दिखाते हैं; यह कहकर कि पार्लियामेंट में हमारी पार्टी को मेजॉरिटी होती तो स्याह करें, सफेद करें सब चलता था, आज वह बात नहीं रही | सच्चे प्रकरणों में कोई लेना - देना नहीं होता, इसलिए सच्चे प्रकरणों में कोई कुछ नहीं करता | सभी की बातों में अपनापन दिखता है; "हम यह काम जरूर कर देते लेकिन तब जबकि तुम्हारा केस फ्रॉड होता |" 20 भ्रष्ट अधिकारियों के चरित्र भी भ्रष्ट हुए हैं | वे अपने अधीनस्थ काम करने वाली महिला, लड़कियों पर अपना संपूर्ण अधिकार मानकर चलते हैं | अतः उनसे फूहड़ता भरी बातें करते हैं | कामकाज करते समय उनके शरीर को स्पर्श करना, कंधे पर हाथ रख; कंधा दबाकर अपना अधिकार दिखाते हैं |

प्रस्तुतिकरण तथा मंचियता - इस नाटक का प्रथम मंचन 22 सितम्बर 1981 से कई निर्देशक व् नाट्यमंडली द्वारा विभिन्न स्थानों पर बीस बार प्रस्तुतिकरण हुआ है | जिससे स्पष्ट है कि मंचियता की दृष्टि से यह नाटक एक सफल नाटक सिद्ध हुआ है | "प्रस्तुत नाटक मध्यवर्ग के अर्थाभाव, देश में व्याप्त नोकरशाही, लालफीताशाही की बढ़ती रिश्वतखोरी, अधिकारियों की, मंत्रियों की उदासिनता, बढ़ता अमानवीय व्यवहार, व्यवस्था में सामान्यं मनुष्य की होने वाली उपेक्षा आदि का वास्तविक चित्रण करता है | साथ ही नाटक प्रशासनिक अकर्मण्यता के विषय को उठाते हुए सरकारी कार्यालयों में बढ़ती जाने वाली लापरवाही, कर्मचारियों की मनमानी करने की प्रवृत्ति, उत्तरदायित्व हीनता और आम आदमी को मिलने वाली पीड़ा को भी चित्रित कर्ता है |" 21

अत: यह नाटक अपनी समकालीन व् सद्यकालीन व्यवस्थाओं की पोल खोल करता हुआ सांगत व् युगजयी नाटक है | इसमें जो समस्याएं दर्शायी गयी थी वे वर्तमान में और भी भयावह रूप में अनुभूत हो रही हैं | इन समस्याओं के समाधान आज तक हमारा समाज, व्यवस्थाएं दे नहीं पायी; सत्य की यह एक विडम्बना ही है |

सन्दर्भ ---

1 हिंदी महिला नाटककार - डॉ. भगवान जाधव - पृष्ठ 173
2 दिल्ली ऊंचा सुनती है - कुसुम कुमार पृष्ठ - 14
3 हिंदी महिला नाटककार - डॉ. भगवान जाधव पृष्ठ - 64
4 दिल्ली ऊंचा सुनती है - मलपृष्ठ से
5 हिंदी महिला नाटककार- डॉ. भगवान जाधव पृष्ठ - 64
6 वही - पृष्ठ 64
7 हिंदी महिला नाटककार - डॉ. भगवान जाधव पृष्ठ - 64
8 वही - पृष्ठ 65
9 दिल्ली ऊंचा सुनती है पृष्ठ - 54
10 वही पृष्ठ - 17
10 वही पृष्ठ - ९३
11 वही पृष्ठ - ९०
12 वही - पृष्ठ 84
13 वही - पृष्ठ 40 3
14 वही - पृष्ठ 53
15 वही - पृष्ठ 72
16 वही - पृष्ठ 62
17 वही - पृष्ठ 63
18 वही - पृष्ठ 79
19 वही - पृष्ठ 73
20 वही - पृष्ठ 85
21 हिंदी महिला नाटककार - डॉ. भगवान जाधव - पृष्ठ 175

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)
VOL- VIII ISSUE- IX SEPTEMBER 2021 PEER REVIEW e-JOURNAL IMPACT FACTOR 7.149 ISSN 2349-638x

नीरजा माधव के 'यमदीप' तथा महेंद्र भीष्म के 'किन्नर कथा' उपन्यास में किन्नर विमर्श

डॉ. ज्ञानेश्वर भाऊसाहेब जाधव
हिंदी विभाग
शिवनेरी महाविद्यालय, शिरुर अनंतपाळ

हमारा सम्पूर्ण समाज दो स्तम्भों पर खड़ा है, वह है पुरुष और स्त्री। आदिम सभ्यता से ही सामान्यत: दोनों का कार्य– आपसी सहयोग से बच्चे पैदा करना और मानव जाति को आगे बढ़ाना। लेकिन हमारे मानव समाज में इन दो लिंगों के अतिरिक्त एक अन्य लिंग की प्रजाति का अस्तित्व मौजूद है। जो न तो स्त्री वर्ग में आता है और न पुरुष वर्ग में और न ही सम्बन्ध बना सकता है और न ही वह गर्भ धारण कर सकता है। इसी वर्ग को समाज द्वारा दिया गया नाम हिजड़ा है। हिंदी में इनके लिए किन्नर, उर्दू में हिजड़ा, पंजाबी में खुसरा, गुजराती में पवैय्या आदि शब्द प्रचलित हैं। इन्हें शिखंडी, मौगा, छक्का और खोजा भी कहा गया है। आज सरकार और सामाजिक संगठनों ने ट्रांसजेंडर यानी तीसरा लिंग सम्बोधन दिया है। थर्ड जेंडर अर्थात् न नर, न नारी दोनों के गुणों का समुच्चय। थर्ड जेंडर में उन व्यक्तियों को समाहित किया जा सकता है जिनका जन्म पुरुष जननांग के साथ हुआ है किंतु वह स्वयं को पुरुष की श्रेणी में असहज पाता है और स्त्री प्रवृत्तियों का भी अनुपालन करता है। भारत के विभिन्न राज्यों में किन्नरों की स्थिति, संस्कृति और उनसे जुड़ी परंपराएँ अलग–अलग हैं। इन किन्नरों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। समाज में किन्नरों को अत्यंत नकारात्मक एवं हेय दृष्टि से देखा जाता है। लोग इन्हें देखकर घृणा करते हैं। लेकिन आज सामाजिक जाग्रति एवं किन्नरों को दिए गए कानुनी अधिकारों की वजह नाम लेने के लिए लज्जित होनेवाले समाज में आज किन्नर या थर्ड जेंडर पर चर्चाएँ हो रहीं हैं। इनको तीसरे लिंग के रूप में मान्यता देकर इनके अस्तित्व की एक सशक्त पहचान मिली है। इस समाज को सशक्त बनाना यह एक बहुत बड़ी चुनौति है लेकिन सकारात्मक प्रयास समाज और सरकार द्वारा किए जा रहे हैं। इसी वजह से एक दिन किन्नर भी स्वाभिमान के साथ जीवन जीते हुए दिखाई देंगे इसमें कोई दो राय नहीं है।

२१वीं सदी के साहित्य में सदियों से उपेक्षित, पीड़ित और शोषित यह जो लिंगनिरपेक्ष समाज, बहिष्कृत किन्नर या थर्ड जेंडर समुदाय पर चिंतन और चर्चा तेज़ हुई है। हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श की शुरुआत सन् २००० के बाद ही हुई है। हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श की शुरुआत नीरजा माधव जी का उपन्यास 'यमदीप' से माना जाता है। तब से साहित्यकारों का ध्यान किन्नर लेखन की तरफ़ गया। उसके बाद मनमीत पत्रिका में 'किन्नर विशेषांक' निकला जो किन्नर जीवन के यथार्थ से जुड़ा हुआ है। 'यमदीप' उपन्यास के बाद कथाकार महेन्द्र भीष्म ने 'किन्नर कथा' उपन्यास लिखकर किन्नर जीवन के अनछुए पहलुओं को यथार्थ रूप में चित्रित करने का सफल प्रयास किया। इन उपन्यासों के अलावा और भी उपन्यास किन्नर विमर्श पर लिखे गए हैं लेकिन मैं यहाँ नीरजा माधव के 'यमदीप' और महेन्द्र भीष्म के 'किन्नर कथा' इन उपन्यासों में चित्रित किन्नर जीवन के तमाम पहलुओं पर चर्चा करनेवाला हूँ।

किन्नर विमर्श पर लिखा गया हिंदी का पहला उपन्यास 'यमदीप' है जिसकी लेखिका नीरजा माधव हैं। इस उपन्यास में लेखिका ने हिजड़ों की जिंदगी के ज्ञात–अज्ञात सभी पहलुओं को पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया है। 'यमदीप' का कथानक हिजड़ा 'नाज़बीबी' के इर्द–गिर्द घूमता है।

वह इस उपन्यास की नायिका है। जब 'नाज़बीबी' पैदा हुई, घरवाले परेशान हैं क्योंकि बच्चा हिजड़ा है। 'नाज़बीबी' का पहले नाम 'नंदरानी' था। नंदरानी से उनकी माँ बेहद प्यार करती। यह पढ़ाई में बहुत तेज़ थी। लेकिन आठवीं कक्षा में पढ़ते वक्त उसे दाढ़ी, मूँछ भी आ गई। समाज उन्हें देखकर हँसने लगा। समाज के भय से तंग आकर माँ–बाप हमेशा सोचते की इसका क्या करे। समाज के द्वारा हो रहा अपमान और माता–पिता की हो रही प्रताड़ना को 'नाज़बीबी' सह नहीं सकी और उन्होंने हमेशा के लिए अपने माता–पिता का घर छोड़कर हिजड़ों की बस्ती में चली गई। यहाँ आकर उसका नाम 'नाज़बीबी' रखा गया। अगर उसे परिवार द्वारा संरक्षण मिलता और समाज द्वारा उसकी अवहेलना नहीं होती तो इस गंदी बस्ती में आकर बसने से बचती और अपने जीवन को नरकीय वेदना से बचा सकती। लेकिन परिवार और समाज की संवेदनहीनता की वजह से एक होनहार लड़की का जीवन बर्बाद हो गया यह रचनाकार यहाँ दिखाना चाहते हैं।

हिजड़ों की इस दुनिया में बुजुर्ग व्यक्ति उनके गुरू होते हैं। इस उपन्यास में उनके गुरू का नाम महताब गुरू है। नंदरानी के माता–पिता जब उसे अपने पास रखकर पढ़ा–लिखाकर उसे अपने पैरों पर खड़ा करवाने की बात करते हैं, तो महताब गुरू द्वारा एक सवाल उठाया जाता है कि– ''माता जी किसी स्कूल में आज तक हिजड़ा को पढ़ते–लिखते देखा है? किसी कुर्सी पर हिजड़ा बैठा है? पुलिस में, मास्टरी में, कलेक्टरी में, किसी में भी? अरे इसकी दुनिया यही है माता जी? कोई आगे नहीं आएगा कि हिजड़ो को पढ़ाओ, लिखाओ, नौकरी दो, जैसे कुछ जातियों के लिए सरकार करती है।''[१] गुरू के इस वाक्य के द्वारा लेखिका सरकार भी इस वर्ग के लिए कुछ करती हुई नज़र नहीं आ रही है इस पर दृष्टि डालना चाहती है। यहाँ तक की समाज की, घर–परिवार के सदस्यों की संवेदनशून्यता की भी बात महताब गुरू द्वारा की गई है। जहाँ तक परिवार की बात है अगर किसी परिवार में बच्चा लंगड़ा, लूला, अंधा, काना पैदा होता है तो उसे समाज उसी रूप में स्विकार करता है, उसके भरण–पोषण की जिम्मेदारी परिवारवाले उठाते हैं। लेकिन जननांग विकार के साथ पैदा हुए बच्चे की तरफ नफरत की दृष्टि से देखते हैं, उसकी अवहेलना करते हैं जो कि उस बच्चे का कोई दोष नहीं होता। यह समाज शारीरिक विकलांग व बीमार बच्चों को तो स्विकार करता है लेकिन जननांग विकार युक्त बच्चों का स्विकार नहीं करता, इस वास्तविकता से भी यह उपन्यास हमें परिचित कराता है। यह वर्ग बेरोज़गारी या धन के अभाव की वजह से वेश्यागिरी करने पर मज़बूर है। महताब गुरू नाज़बीबी और सब किन्नरों को जीवन के बारे में समझाते हुए कहते हैं कि वेश्यागिरी करने से यौनरोग बढ़ते हैं, लेकिन चमेली का संवाद दिल को झकझोर के छोड़ देता है– ''तन को भगवान ने आधा टूकड़ा बनाया कि किसी लायक नहीं रहे और पेट? पेट तो नहीं बंद करके भेजा। वह तो खुला ही है रोज भरो, रोज खाली।''[२] यह संवाद स्पष्ट करता है कि नाच–गाकर जितना धन उनको मिलता है उससे उनकी उपजीविका नहीं चलती इसलिए मज़बूरीवश वेश्यावृत्ति करनी पड़ती है। इस उपन्यास के जरिए लेखिका समाज को यह संदेश देना चाहती है कि जिस प्रकार हम विकलांग बच्चों का पालन–पोषण, शिक्षा की जिम्मेदारी लेते हैं वैसे ही जननांग विकार से युक्त बच्चों को भी उच्च शिक्षा देनी चाहिए, परिवार से उन्हें निष्कासित नहीं करना चाहिए। आज संवैधानिक बदलाव की वजह से परिस्थितियाँ कुछ बदली हैं लेकिन और भी बहुत कुछ सामाजिक बदलाव की आवश्यकता है।

किन्नर विमर्श पर लिखा गया महेंद्र भीष्म का 'किन्नर कथा' उपन्यास बहुत ही चर्चित उपन्यास है। 'किन्नर कथा' उपन्यास में कथाकार लिंगोपासक समाज से प्रश्न करते हैं कि क्यों तृतीयपंथी लोगों को सहारा नहीं दिया जाता। किन्नरों को सिर्फ आम जनता ही नहीं, बड़े–बड़े राजघराने के राजा–महाराजा भी अपनाने से डरते हैं, इसका वर्णन प्रस्तुत उपन्यास में है। इसमें महाराज जगतसिंह के घर दो जुड़वाँ 'सोना' और 'रूपा' राजकुमारियों का

जन्म होता है। कुछ दिनों बाद महाराज को सोना की अपूर्णता का ज्ञान होता है तब अपनी झूठी शान को बचाए रखने के लिए दीवान को उसकी हत्या का आदेश देता है। दीवान का मन पिघल जाता है और वह उसे न मारकर किन्नर गुरू तारा के हाथ सौंप दिया जाता है। यह 'सोना' किन्नरों में 'चंदा' नाम से प्रचलित हो जाती है, वह अच्छी नृत्यांगना बन जाती है। 'तारा' गुरू ने अपने जीवन के स्वयं के अनुभव द्वारा 'चंदा' को राजकुमारी की तरह पाला और अच्छे संस्कार दिए। यहीं चंदा किन्नरों के डेरे में १५ साल पली–बढ़ती संयोग से १५ साल बाद अपनी बहन की शादी में बधाई देने जाती है तो उसे अपना अतीत याद आ जाता है, वे अपने घर को पहचानती है। तब उसकी माँ उसे अपनाने की कोशिश करती है लेकिन महाराज तब भी चंदा को मारने को तैयार हो जाते हैं। किन्नर विमर्श पर के उपन्यासों में बच्चों के प्रति माँ के प्यार एवं संवेदना को दिखाया गया है लेकिन पिता द्वारा या पुरुष, समाज द्वारा अपनाते हुए नहीं दिखाई दिया। लेकिन अंत में जगतसिंह हो या तारा गुरू का भतीजा मनीष हो, इस पुरुष वर्ग के ऱ्हदय परिवर्तन की बात की है। उपन्यास में युवा और शिक्षित मनीष जैसे समझदार लोग, जो लैंगिक भेदभाव को मिटाने की भरपूर कोशिश करते हुए दिखाई देते हैं, साथ ही मनीष तारा को किन्नर रूप में स्वीकार करता है और उसके साथ जीवन बिताने की शपथ लेता है। वहीं चंदा की सर्जरी करवा के ठीक कराने की बात आती है तो उसे स्विकार करता हुआ डॉक्टरों से चर्चा के बाद चिकित्सीय परिक्षण और सामान्य ऑपरेशन के बाद सोना के सुखद भविष्य की तस्वीर दिखाई गई है। उपन्यास की मुख्य पात्र 'तारा' किन्नर गुरू है जो सोना को सम्मानजनक जीवन देती है। क्योंकि उन्होंने किन्नर होने की जो असीम पीड़ा है, उसको भोगा है। उस पीड़ा की अभिव्यक्ति करती हुई वह कहती है– ''भगवान ने मेरे साथ ऐसा अन्याय क्यों किया? मैं हिजड़ा हूँ तो इसमें मेरा क्या कसूर? मुझ निर्दोष को किस बात की सजा मिल रही है? मेरा अपना कौन है? घर–बार, माँ–बाप, भाई–बहन, बच्चे कोई नहीं है मेरा, जिसे मैं अपना कह सकूँ, सब कुछ होते हुए भी कोई मुझसे रिश्ता नहीं रखना चाहता, कोई मुझे अपनाने को तैयार नहीं है। बचपन से आज तक बस अपने आप में ही दर्द पीते हैं। दूसरों को हंसाते आये हैं, उनकी खुशियों में शरीक होते आए हैं, आशीष के सिवा कभी किसी को कुछ नहीं दिया, ईश्वर से बस एक शिकायत है। आखिर क्यूँ उसने हमें ऐसा बनाया? क्यों हिजड़ा होने का दंड दिया? काश! हम भी औरों की तरह स्त्री या पुरुष होते, हिजड़ा होना कितनी बड़ी सजा है, यह कोई हिजड़ा ही समझ सकता है, दूसरा कोई नहीं, कभी नहीं।''[३] किन्नरों के साथ समाज के हेय व्यवहार को उपरोक्त पंक्तियाँ दर्शाती हैं।

इस उपन्यास में लेखक ने इस तथ्य की तरफ सबका ध्यान खिंचा है कि बहुत सारे किन्नरों का चिकित्सा शास्त्र का आधार लेकर उनका लिंगपरिवर्तन करके उनको सामान्यतः एक स्त्री या पुरुष वर्ग में परिवर्तित करके उनके जीवन को सफल बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा के जरिए उनमें सुधार और सम्मानजनक जीवन जीने का अवसर उपलब्ध कराया जा सकता है। सामान्यजन इस वर्ग के प्रति हमदर्दी दिखाए। किन्नर जीवन को भोग रहे अन्य किन्नर आगे आकर ऐसे बच्चों को शिक्षा, स्नेह, माया, प्रेम जो परिवार द्वारा नहीं मिला वह देने का काम कर रहे हैं। उपन्यास की पात्र 'तारा' जब सोना को अपने पास रखती है तब उसके लालन–पालन करने के लिए मातिन का सहयोग माँगते हुए कहती है– ''बैलगाड़ी में सो रही बच्ची हमारी तरह है, बहुत बड़े घर–परिवार से है, उसका लालन–पालन हमें करना है।''[४] यहाँ यह स्पष्ट है कि सोना को हिजड़ा होने के कारण परिवार से बिछड़ना पड़ा। तब तारा ही उसे माता–पिता का प्यार देती है। उन तमाम बुराइयों एवं दुःखों से 'सोना' को बचाने की जिंदगीभर कोशिश करती है। 'सोना' को सम्मानजनक जीवन मिले इसलिए उसे अच्छी नृत्यांगना बनाती है। उपन्यास में कुछ नकली हिजड़ों की चर्चा भी की गई है जो हमेशा रात में लोगों की लूटपाट करते हैं। ऐसे लोगों के कारण

हिजड़ों की समाज में बदनामी हो रही है लेकिन हिजड़ों की अपनी संस्कृति में किसी का नुकसान करना, लूटपाट करना पाप माना जाता है, हिजड़े जिंदगी भर कभी भी गलत काम नहीं करते क्योंकि उनकी धारणा है कि अगर अगला जन्म हिजड़ा रूप में न हो इसलिए जिंदगी में कोई बुरा काम नहीं करना चाहिए। इस तरह बहुत सारे सवाल उपन्यास में उठाए गए हैं। जो इस वर्ग की इस पीड़ा के लिए सिर्फ और सिर्फ उसका परिवार, समाज और सरकार दोषी है। इन सबको मिलकर हाशिए पर रखे गए इस उपेक्षित वर्ग को सामान्य जीवन देने के लिए हम सबको भरसक प्रयास करने की जरुरत है। इस दलदल से बाहर निकालने का काम हम उच्च शिक्षितों का है और इसके लिए हमें पूरी ईमानदारी के साथ प्रयास करने की आवश्यकता है।

अंत में यही कहा जा सकता है कि किन्नर वर्ग का जीवन बड़ा ही कष्टदायक, क्लेशदायक, हेयपूर्ण है। इस वर्ग को हमें सम्मान देने की आवश्यकता है, साथ ही शिक्षा और नौकरी देकर उसे मुख्यधारा में लाने की आवश्यकता है। इसके लिए सरकार, परिवार और समाज को मिलकर काम करना होगा तभी हम इस सदियों से वंचित, पीड़ित, शोषित, हेय जीवन जीने के लिए मज़बूर वर्ग को मुख्यधारा से जोड़कर उनको सम्मानजनक जीवन जीने का अधिकार दे सकते हैं। इस वर्ग को उन तमाम समस्याओं से मुक्त कराना हम सबके जीवन का उद्देश होगा तभी यह बात संभव हो पाएगी कि किन्नरों का जीवन एक सामान्य मनुष्य जीवन की तरह रहेगा। जब हम उनको सामान्य जीवन देने में सफल होंगे। तब इनके सामने अपनी अस्मिता की रक्षा का प्रश्न नहीं रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ :

१. यमदीप– नीरजा माधव (२००२), सुनील साहित्य सदन, दिल्ली।
२. किन्नर कथा– महेंद्र भीष्म (२०१४), सामयिक प्रकाशन, दिल्ली।
३. भारतीय साहित्य एवं समाज में तृतीय लिंगी विमर्श– संपादक: डॉ. विजेन्द्र प्रताप सिंह, रवि कुमार गौंड़ (२०१६), अमन प्रकाशन, कानपुर।
४. साहित्य में किन्नर विमर्श की आवश्यकता– डॉ. आर. पी. वर्मा
५. २१वीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में किन्नर जीवन के अनछुए पहलू– मिलन बिश्नोई

स्वामी विवेकानंदजी की विचारधारा का समाजशास्त्र तथा इतिहास पर प्रभाव

डॉ. ओमप्रकाश ब. झंवर
स्वा. सावरकर महाविद्यालय, बीड.

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन मे अपने जोशीले व्याख्यानों तथा लेखों से जान फूंकने तथा भारत के अध्यात्मिक नेतृत्व को विश्व पटल पर पुर्नस्थापित करने वाले युग-पुरूषों में स्वामी विवेकानंद एक ऐसे महापुरूष थे जिनके विचारों ने न केवल अपनी पीढी के लोगों को प्रभावित किया अपितु आने वाली कई पीढियों के लिए जीवन का एक सुस्पष्ट मार्ग खोल दिया। स्वामी दयानंद सरस्वती के पश्चात् स्वामी विवेकानंद आधुनिक भारत के ऐसे महान् निर्माता, सन्यासी, विचारक तथा प्रचारक थे जिन्होंने स्वयं राजनिती में प्रत्यक्ष रूप से भाग नही लिया अपितु अपनी प्रतिभा से देशवासियों में स्वतंत्रता का दीपक जलाया, राष्ट्रीय गौरव के प्रति चेतना जागृत की एवं पाश्चात्य देशों में भारत की गौरवपूर्ण संस्कृति की धाक जमा दी। रवींद्र नाथ टैगोर ने उनके विचारों से प्रभावित होकर कहा – "यदि कोई भारत को समझना चाहता है, तो उसे विवेकानंद को पढना चाहिए ।" स्वामी विवेकानंद का जन्म १२ जनवरी १८६३ ई. को कलकत्ता के एक सुसंस्कृत कायस्थ परिवार में हुआ था।

भारत के तेज का पुंजीभूत रूप है– विवेकानंद। स्वामी विवेकानंद भारत के सम्भवतः पहले पुरूष हैं जिन्होंने पश्चिम के और विज्ञान के इस तरीके की खुलकर प्रशंसा की। उन्होंने स्वयं प्रयोग करके सच और झूठ का निर्णय करने की विज्ञान की विधी को धर्म के क्षेत्र में भी लागू किया। धर्म कहता है, ईश्वर है तो विवेकानंद सिर्फ इस कथन को पोथियों और पुराणों में पढकर नहीं रह गए बल्कि उन्होंने भक्ति की, योग किया, ज्ञानाभ्यास किया, निश्काम कर्माभ्यस किया और ईश्वरका प्रत्यक्ष अनुभव करने के बाद, उन्होंने सिंहनाद किया। धर्म विश्वास पात्र नहीं है, धर्म है साक्षात्कार।

कॉलेज के दिनों में उन्होंने भारतीय और अंग्रेज प्रोफेसरों का ध्यान अपनी और आकर्षित किया। प्रिंसिपल डब्लू, डब्लू, हेस्टी ने कहा, 'मैने सुदूर देशों का भ्रमण किया है पर अभी तक मुझे कभी भी ऐसा लडका नहीं मिला जिसमें नरेंद्र की प्रतिभा और सम्भावनाएँ हों। वह जीवन में अवश्य ही अपनी छाप छोड जाएगा।' नरेंद्र ने केवल पाठ्क्रम तक ही अपने अध्ययन को सीमित नहीं रखा बल्कि कॉलेज जीवन के प्रथम दो वर्षों में ही पाश्चात्य तर्कशास्त्र के समस्त प्रमाणिक ग्रंथों का पूरी तरह अध्ययन किया और शेष वर्षों में उन्होंने पाश्चात्य दर्शन तथा युरोप के विभिन्न राष्ट्रो के प्राचीन व अर्वाचीन इतिहास का अध्ययन किया।

एक दिन वे वेद पढा रहे थे कि बांग्ला भाषा के सुविख्यात नाटककार गिरीशचंद्र घोष वहाँ आए और बोले – नरेंद्र तुमने वेद, वेदान्त बहुत पढे हैं पर देश की जो आज दुरावस्था हे भूख और दूसरी बुराईयाँ समाज को खा रही हैं, क्या इनको दूर करने का उपाय किसी धर्म में मिलता है? नरेंद्र क्या कहते, वहाँ रूकना उनके लिए कठिन हो गया। समाज की जडता और दुख को दूर करने के समाधान के लिए उनका चित्त व्याकुल हो उठा। वे मार्ग खोजने लगे। अपनी शंकाओं के समाधान के लिए वे ब्रह्मसमाज में सम्मिलित हुए लेकिन समाधान न हुआ। उन्होंने केशव चन्द्रसेन तथ महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर के उपदेश सुने। परन्तु जिज्ञासा शांत न हुई।

नरेंद्र नाथ ने अपने कॉलेज के प्रिंसिपल विलियम हेस्टी से एक बार श्री रामकृष्ण का उल्लेख सुना था। प्रिंसिपल हेस्टी जब कक्षा में वड्र्सवर्थ की एक कविता पढा रहे थे तो उन्हें कवि की उस भावास्था को समझाने में कुछ कठिनाई अनुभव हुई। तब उन्होंने विद्यार्थियों से कहा कि यदि वे ऐसी अनुभूति का प्रत्यक्ष प्रमाण चाहते हैं तो दक्षिणेश्वर जाकर रामकृष्ण को देख सकते हैं जिन्हें उन्होंने स्वयम् उस अनुपम भावावस्था का आनंद लेते देखा है।

नरेंद्रनाथ कुछ मित्रों के साथ दक्षिणेश्वर गए । अपने ही विचारें में लग्न अपने शरीर और वस्त्रों के प्रति लापरवाह और बाह्यसंसार के प्रति अनमने, नरेंद रामकृष्ण के कमरे में प्रविष्ट हुए । श्री रामकृष्ण को यह देखकर बडा अचरज हुआ कि कलकत्ते के भौतिक वातावरण में ऐसा अध्यात्मिक पुरूष कहाँ से निकल आया। नरेंद्रनाथ ने श्री रामकृष्ण के अनुरोध पर दो बंग्ला गीत गाए । इन गीतों में इतनी आंतरिकता और भक्ति थी कि श्री रामकृष्ण समाधिमग्न हो गए ।

वे बार-बार दक्षिणेश्वर जाने लगे। श्री रामकृष्ण आतुरता से उनकी बाट जोहते रहते। यद्यपि श्री रामकृष्ण के प्रति, नरेंद्र की बडी श्रध्दा थी तथापि उन्होंने उनके तर्क करना नहीं छोडा था। कभी कभी क्षुब्ध होकर वे कहते 'जब तू मेरी बातों पर विश्वास नहीं करता, तो मेरे पास आता क्यों है?' तुरंत नरेंद्र उत्तर देते, 'क्योंकि मैं आपसे प्यार करता हूँ पर इसका ये मतलब नहीं कि बिना सोचे-समझे मैं आपकी बातों को मान लूं।' श्रीरामकृष्ण नरेंद्र की बौध्दिकनिष्ठा से आनन्दित होते।

१८८५ ईस्वीं में श्री रामकृष्ण गले के कैंसर से पीडित हुए । रामकृष्ण जान गए थे, कि उनका कार्य पूरा हो रहा है। एक दिन उन्होंने नरेंद्र को बुलाकर कहा - 'इन युवा भक्तों की देखरेख करने का निर्देश में तुम्हें देता हूँ। मैं तेरे संरक्षण में इन लोगों को छोडता हूँ। देखना मेरे चले जाने के बाद भी वे साधन-भजन करते रहें।'

नरेंद्र जैसे जैसे अध्यात्म की गहराइयों में डूबते गए, उनका मन घर बार से विरक्त होता गया। अंत में उन्होंने समाज और राष्ट्र की सेवा को लेकर ग्रहत्याग किया। कुछ समय बाद रामकृष्ण परमहंस अपनी दैवी शक्ति ओर अपार ज्ञान सौंपकर १६ अगस्त १८८६ को परलोकवासी हुए । रामकृष्ण और नरेंद्रनाथ का मिलन, श्रध्दा का मिलन था, रहस्यवाद और विज्ञानवाद का मिलन था।

१९९१ के अन्त में स्वामीजी ने अपने दो वर्षीय भारत भ्रमण का प्रारंभ किया । इस भ्रमण में उन्होंने भारत की तीव्र दरिद्रता का अनुभव किया । अपने गुरूदेव के 'धर्म भूखे पेट के लिए नहीं है' के वचन की सत्यता उन्हें तीव्रता से अनुभव हुई । यही कारण था कि उन्हें अमेरिका जाने का विचार आया जिससे वे पश्चिम से भारत की भौतिक अवस्था को सुधारने की साधना प्राप्त कर सकें और बदले में उन्हें उनके अध्यात्मिक उन्नयन के लिए वेदान्त का संदेष दे सकें।

स्वामीजी कहते थे, 'अंध विश्वास करना ठीक नहीं, अपने विचारशक्ति, युक्ति काम में लानी होगी । यह प्रत्यक्ष करके देखना होगा कि शास्त्र में जो कुछ लिखा है वह सत्य हैं या नहीं । भौतिक विज्ञान तुम जिस ढंग से सीखना हो ठीक उसी प्रणाली से धर्म विज्ञान भी सीखना होगा । प्रत्यक्ष प्रमाण का निरादर करने से ही कट्टरता, अंधविश्वास और कठमुल्लापन पैदा होता है ।'

स्वामी विवेकानंद ने राजस्थान में शेखावाटी अंचल के खेतड़ी में १९९१ में शास्त्रों का अध्ययन किया था और खेतड़ी नरेष अजीत सिंह ने उनका नाम 'विवेकानंद' रखा था । खेतड़ी नरेश अजीत सिंह के आर्थिक सहयोग से ही स्वामी विवेकानंद अमेरिका के शिकागो शहर में आयोजित विश्व धर्म सम्मलेन में शामिल होने गए, और वेदांत की पताका फहरा कर भारत को विश्व धर्मगुरू का सम्मान दिलाया था । खेतड़ी पुस्तकालय में उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार, नरेश से माउंट आबू पव्रत पर पहली बार स्वामी विवेकानंद की मुलाकात १४ जून १८९१ को हुई और इस युवा संन्यासी से वह इतने प्रभावित हुए कि उन्हें अपना गुरू बना लिया तथा अपने साथ खेतड़ी चलने का आग्रह किया, जिसे स्वामीजी ठुकरा नहीं पाए, पहली बार स्वामी विवेकानंद ७ अगस्त १८९१ को खेतड़ी आए ।

उन्होंने यहां राजपंडित नारायण दास शास्त्री से 'अष्टध्यायी' तथा 'महाभाष्यधायी' का अध्ययन किया. इसके साथ ही व्याकरणाचार्य और पांडित्म्य के लिए विख्यात नारायण दास शास्त्री को गुरू कह कर संबोधित किया. सोमवार ११ सितम्बर १८९३ को विशाल कोलम्बस हॉल में महासभा का प्रथम सत्र प्रारंभ हुआ । दोपहर के बाद स्वामीजी को पुकार गया२ अपने भाषण का आरंभ करते हुए स्वामीजी ने सम्बोधन किया, 'अमेरिका निवासी बहनो और भाईयो 'वे इतना ही कह पाए थे कि तालियों की गड़गड़ाहट करते लोग उठ खडे हुए । निश्चित ही वे एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने धर्म महासभा की औपचारिकता छोड़कर एक ऐसी भाषा में बोलना शुरू किया जिसकी लोग प्रतीक्षा कर रहे थे ।

उन्होंने बड़े सुन्दर श्लोकों को प्रस्तुत किया - विभिन्न नदियाँ भिन्न-भिन्न स्त्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो भिन्न - भिन्न रूचि के अनुसार टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्तें से जाने वाले लोग अन्त में तुझ में ही आकर मिल जाते हैं।

स्वामीजी के व्याख्यान की सार्वजनीनता, मौलिक तत्परता और उदारता ने सभी को मंत्रमुग्ध कर दिया । स्वामीजी किसी धर्म के न होकर मानो समग्र भारत और मानवता के प्रतिनिधि थे ।

अपने वेदान्त कार्य को सुदृढ़ करने के लिए फरवरी १८९६ के अंतिम दिनों में उन्होंने सार्वजनिक भाषण देना बन्द कर दिया और एक निश्चित समिति के रूप में वेदान्त आंदोलन को गठित कर अपने उपदेशों को पुस्तक रूप में समिति के माध्यम से प्रकाशित करना प्रारंभ किया । इस प्रकार न्यूयार्क की वेदान्त सोसायटी अस्तित्व में आई । स्वामीजी की कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें जैसे राजयोग, भक्तियोग,

कर्मयोग प्रकाशित हुई । उनकी एक शिष्या कुमारी उचर का 'थाउजैन्ड आइलैन्ड पार्क' में बढ़िया निवास स्थान था२ यह पार्क सेन्ट लारेन्स नदी में सबसे बड़ा द्वीप था२ इस स्थान की शांति में ही स्वामीजी ने 'सन्यासी का गीत' नामक अपनी अमर कविता भी लिखी । यही रहते हुए स्वामीजी के मुख से जो प्रेरणा पूर्ण वचन निकले, उसे उनकी शिष्या कुमारी वाल्डों ने Inspired Talks (देववाणी) में संग्रहित किया ।

28 मई 1896 को मैक्समूलर से उनकी भेंट हुई । मैक्समूलर ने स्वामीजी को बताया कि वे रामकृष्ण के जीवन और उपदेशों पर एक बृहत् ग्रंथ लिखना चाहते हैं । स्वामी विवेकानन्द ने अपने पास जो कुछ उपलब्ध था, वह सब प्रो. मैक्समूलर को दिया, बाद में सब, तथ्यों का समायोजन कर उन्होंने ग्रंथ प्रकाशित किया 'Ramkrishna : His Life and Sayings!'

१ मई १८९७ को स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। धीरे - धीरे यह संस्था विकसित हुई । आज सारे विश्व में उसकी शाखाएँ हैं। मिशन की स्थापना के दो वर्ष बाद वे फिर अमेरिका गए और लौटते हुए इग्लैंड, फ्रान्स, ऑस्ट्रिया, ग्रीस, मिस्त्र आदि देशों की भी यात्रा की ।

जीवन को समृध्द बनाने के लिए विवेकानन्द कहते हैं -'अभ्यास अत्यंत आवश्यक है,तुम प्रतिदिन घंटों मेरे पास बैठकर मेरी बात सुन सकते हो लेकिन यदि तुम स्वयम् अभ्यास नहीं करोगे तो एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। '

अपने जीवन के अंतिम दो वर्षों में वे अधिकांशतः बेलूर मठ में रहे। सोलह वर्षो तक लगातार देश - विदेश का भ्रमण कर भारतीय संस्कृति और अध्यात्म का सन्देश घर-घर पहुंचाया। अधिक परिश्रम का प्रभाव उनके शरीर पर पड़ा, वे अस्वस्थ रहने लगे। ०४ जुलाई १९०२ को वे पूजाघर में गए और तीन घन्टे ध्यान में बिताए । दोपहर में सब शिष्यों के साथ भोजन किया। संध्या समय फिर अपने कमरे में एक घन्टे ध्यान किया। फिर वे बिस्तर पर लेट गए । जपमाला अब भी उनके हाथ में थी। एक घन्टे बाद उन्होंने करवट बदली और निस्तब्ध हो गये। तब स्वामीजी की आयु मात्र ३९ वर्ष की थी। उन्होंने अपनी ही भविष्यवाणी सार्थक और सिध्द कर दी। उन्होंने कहा था, "मै अपने चालीस वर्ष पूरे देखने के लिए जीवित नहीं रहूंगा। स्वामी विवेकानन्द के सन्दर्भ में राष्ट्र कवि दिनकर लिखते हैं - अभिनव भारत को जो कुछ कहना था, वह विवेकानन्द के मुख से उद्गीर्ण हुआ। अभिनव भारत को जिस दिशा की ओर जाना था, उसका स्पष्ट संकेत विवेकानन्द वह सेतु है जिस पर प्राचीन और नवीन भारत परस्पर आलिंगन करते हैं, विवेकानन्द वह समुद्र है जिसमें धर्म और राजनीति, राष्ट्रीयता और अन्तरराष्ट्रीय तथा उपनिषद और विज्ञान सब के सब समाहित होते हैं।

विश्वकल्याण के लिए स्वामीजी ने समता, स्वातंत्र्य और विश्व बंधुत्व के संबंध में जो विचार प्रस्तुत किय हैं, वे आधुनिक युग में सर्वत्र कार्यान्वित हो रहे हैं । स्वामीजी की विचारधारा आज विश्व के लिए उर्जा का अखंड स्त्रोत है । विवेकानन्द का धर्मप्राण जीवन धर्म में विज्ञान और जीवन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का नया विज्ञान हमारे सामने रखता है ।

सारांश : -

स्वामी विवेकानंद के विचारानुसार राष्ट्रीयता का आधार धर्म व संस्कृति है । अपने हिन्दुत्व को भारत की राष्ट्रीय पहचान के रूप में प्रतिष्ठित किया था । १७ सितम्बर १८९३को शिकागो में धर्म सभा में आपने भारत को हिन्दू राष्ट्र के नाम से महिमा मंडित किया था । शिकागो से वापसी पर कहा था कि सोया देश अब जाग उठा है । अपने पूर्व गौरव को प्राप्त करने के लिए इसे अब कोई नहीं रोक सकता। आपने सभी हिन्दुओं को सब भेदों से उपर उठकर अपनी राष्ट्रीय पहचान पर गर्व करना सिखाया था । आपने लाहौर में हिन्दुत्व के सामान्य आधार पर अपना व्याख्यान दिया था ।

भारत वर्ष के सन्दर्भ में आपने यथार्थ दर्शाते हुए कहा था कि भारत भूमि पवित्र भूमि है। भारत मेरा तीर्थ है२ भारत मेरा सर्वस्व है। भारत की पुण्य भूमि का अतीत गौरवमय है। यही वह भारत वर्ष है जहाँ मानव, प्रकृति, एवं अंतर्जगत की रहस्यों की जिज्ञासाओं के अंकुर पनपे थे। चिंतन मनन कर राष्ट्रीय चेतना जागृत करो। लेकिन आध्यात्मिकता का आधार मत छोडो। आपका स्पष्ट मत था कि पाश्चात्य जगत का अमृत भी हमारे लिए विष हो सकता है।

उपनिशद् ज्ञान के भण्डार हैं। उसका अनुसरण कर अपनी निज पहचान राष्ट्र का अभिमान स्थापित करो। १८९६ की विदेश यात्रा के बाद विवेकानन्द ने पूरे देश का दौरा किया था। स्वामीजी ने कन्याकुमारी में देश के युवाओं को सिंहत्व जगाने का चुनौती पूर्ण संकल्प लिया था। आपने बार-बार कहा था कि भारत के पतन का कारण धर्म नहीं हैं। अपितु धर्म के मार्ग से दूर जाने के कारण ही भारत का पतन हुआ है। अपितु धर्म के मार्ग से दूर जाने के कारण ही भारत का पतन हुआ है। जब-जब हम धर्म को भूल गये तभी हमारा पतन हुआ है और धर्म के जागरण से ही हम पुनः नवोत्थान की

ओर बढ़े हैं। स्वामीजी का मानना था कि मातृभूमि की सेवा के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। तीस वर्ष की आयु में विश्व धर्म सभा में भारतीय ज्ञान एवं गौरव का ध्वज विवेकानंद जी ने फहराया था। २५ वर्ष की आयु में नरेन्द्र ने गेरूवे वस्त्र धारण करके संपूर्ण भारत वर्ष की पैदल यात्रा की थी। शिकागो में विश्व धर्म संसद का आयोजन किया गया था। जिसका मूल उद्देश्य ईसाई धर्म को श्रेष्ठ बतलाना था। आपने विचारों से अमेरिका में तहलका मचा दिया था। वहॉ के मीडिया ने आपको साइक्लोनिक हिन्दू का नाम दिया था। अध्यात्म विद्या और भारतीय दर्शन के बिना विश्व अनाथ हो जायेगा कहकर स्वामीजी ने पुनः भारत को गुरूपद पर प्रतिष्ठित कर दिया था। गुरूदेव रविंद्र नाम टैगोर ने कहा था। उसमें सब कुछ सकारात्मक पायेंगे, नकारात्मक नहीं। सब उनमें अपने नेता का दिग्दर्शन करते हैं। वे ईश्वर के प्रतिनिधि थे। सब पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेना ही उनकी विशिष्टता थे। स्वामी विवेकानन्दजी केवल एक संत ही नहीं थे। एक महान देश भक्त थे। वक्ता थे, विचारक थे, लेखक थे, मानवता प्रेमी भी थे। स्वतंत्रता आन्दोलन में आपने देशवासियों को आहवान किया था। गॉधीजी ने स्वामीजी के ग्रंथ बड़े ही मनोवेग से पढ़े थे। फल स्वरूप देश के प्रति उनका प्रेम हजारों गुना बढ़ गया था। नेताजी ने कहा था कि स्वामी विवेकानन्द जी का धर्म राष्ट्रीयता को उत्तेजना देनेवाला धर्म था। आपके विचारों से देश भक्ति और राजनैतिक मानसिकता उत्पन्न हो गई थी। जवाहरलाल नेहरू ने भी आपकी प्रशंसा की थी। उनका कहना था। उठो, जोगो, स्वयं जागकर औरों को जगाओ। अपने मानव जन्म को सफल करो। ४ जुलाई सन् १९०२ को शुक्ल यजुर्वेद की व्याख्या की थी। इस प्रकार से विवेकानंदजी की विचारधारा का समाजशास्त्र तथा इतिहास पर प्रभाव दिखाई देता है।

संदर्भ :-

१.विवेकानन्द साहित्य खंड
२.शिक्षा – स्वामी विवेकानंद
३.स्वामी विवेकानन्द व्यक्ति और विचार – राजेंद्र प्रकाश गुप्त
४.भारतीय राजनीतिक चिन्तक स्वामी विवेकानन्द – मनोजकुमार सिंह

नारी विवशता : पचपन खंभे लाल दीवारें

-डॉ.व्ही.सी.ठाकुर

स्वातंत्र्योत्तर महिला कथाकारों में उषा प्रियंवदा का स्थान अद्वितीय है। उषा प्रियंवदा ने अपना परिचय देते हुए लिखा है," मेरा जीवन एक पुस्तक है, जिसमें एकदम कुछ खुला है और कुछ एकदम गोप्य-जो मेरा प्राप्य और संचित पूंजी है। जो मेरी प्रेरणा का स्रोत और उत्स है, पर जब वह कहानियां, उपन्यास के माध्यम से पृष्ठों पर बिखरता है तब वह इतना बदला हुआ होता है कि उसमें मेरा कुछ भी अंश नहीं होता शायद आत्मकथा और गल्प में यही अंतर होता है। जीवन अनुभवों, विचारों, अनुभूतियों के एक पतले से तंतु को लेकर एकदम नया संसार गढ़ सकना उसी तरह-तरह के चरित्रों से आबाद करना इसी में मेरी वास्तविकता, प्रेरणा और कल्पना का मिश्रण है।" उषा जी उन कथाकारों में है जिन्होंने आधुनिक जीवन की ऊब, छटपटाहट, संत्रास और अकेलेपन को स्थिति की अनुभूति के स्तर पर पहचाना और व्यक्त किया है। यही कारण है कि उनकी रचना में एक और आधुनिकता का प्रबल स्वर मिलता है तो दूसरी और उन में चित्रित प्रसंगों तथा संवेदना के साथ हर वर्ग का पाठक तादात्म्य का अनुभव करता है। 'पचपन खंभे लाल दीवारें' उषा जी का उपन्यास जिसमें भारतीय नारी की सामाजिक,आर्थिक विवशता से जन्मी मानसिक स्थिति का, व्यवस्था का मार्मिक चित्रण है। छात्रावास के पचपन खंबे और लाल दीवारें उन परिस्थितियों के प्रतीक है जिनमें रहकर सुषमा को ऊब तथा घुटन का तीखा एहसास होता है, फिर भी उससे मुक्त नहीं हो पाती, शायद होना नहीं चाहती, उन परिस्थितियों के बीच जीना ही उसकी नियति है। उषाजी साहित्य में एक अलग प्रकार का जीवन हमारे सामने प्रस्तुत करती है। आरम्भ से अंत तक एक नारी छाई रहती है। सभ्य एवं सुशिक्षित, नौकरी पेशा, विवाहिता होने के नाते इन्होंने इस प्रकार के स्त्रियों की समस्याओं का चित्रण किया है। साथ ही साथ समाज में प्रचलित समस्याओं का चित्रण भी किया है। मानो उनके प्रति मनुष्य को सचेत करने का प्रयास किया है। कहानियों के कथानक अत्यंत छोटे हैं। विषय घरेलू है। पारिवारिक समस्याएं, आर्थिक समस्याएं, नारी विषयक समस्याएं, अधिक रूप में चित्रित है। पात्रों की संख्या कम दिखाई देती हैं। अधिक रूप से पात्रों का उषा जी ने सफलता के साथ मनोविश्लेषण भी किया है। संवादों की सुंदर योजना उषा जी की विशेषता रही है। भाषा अत्यंत सीधी, सरल, नाट्यपूर्ण, पात्रानुकूल, स्वाभाविक दिखाई देती है। सारे तत्वों के होते हुए भी देश, काल, वातावरण का चित्रण उनकी कहानियों का उद्देश्य है। नारी जीवन उनके कथा साहित्य का केंद्र बिंदु रहा है। आधुनिकता के सकारात्मक प्रभाव के साथ-साथ कुछ दुष्प्रभाव नारी चेतना पर हावी है। पचपन खंभे लाल दीवारें की नायिका नौकरी कर रही हैं, जब से पढ़ाई खत्म हुई है, नौकरी करना वह अपनी जिम्मेदारी मानती है, तो कुछ विवशता भी है, वह दिखने में सुंदर होने के कारण कॉलेज के सेक्रेटरी अनेक प्रलोभन उसके सामने रखते हैं। अपने शरीर को बेच कर धन,आराम उसे कतई पसंद नहीं था। पहली नौकरी इन कारणों से जब छोड़ दी थी तब, पिता साल भर बीमार थे। बिना वेतन छुट्टी पर थे, मां कहती थी, इन बच्चों का क्या होगा ? हर बार आर्थिक कठिनाइयों के कारण उसे अपने आभूषण बेचने पढ़ते थे। अपने आपको वह ऐसी नजरों से देखती थी, जैसे सारी मुसीबतों की जड़ वह खुद ही है। जब अधेड़

धनवान वकील से विवाह करने का आग्रह आया सुषमा पत्थर ही हो गई थी, वह कई बार सोचती कि "यह कैसी मां है मेरी, जिंदगी ने उन्हें निचोड़ लिया है। पति को दूसरी पत्नी होने पर उनके कोई अरमान पूरे ना हुए। बहुत सारी खीज और झुझलाहट परिवार पर ही निकालती।" सुषमा को अपने पिता पर भी बड़ा गुस्सा था, यदि वह चाहते तो उसका ब्याह करा सकते थे, औरों के पिता अपनी बेटी के बारे में कितने चिंतित रहते हैं। क्या उसी के पिता अनोखे थे ? उन्होंने कभी यह नहीं चाहा कि सुषमा का विवाह हो क्योंकि उसी से आर्थिक सहारा उन्हें होता था । शादी हो जाएगी तो आर्थिक सहारा सुख जाएगा ? जब वह एम.ए. फाइनल में थी तभी उसकी शादी तय होने में ही थी । पर पिता ने ज्यादा ध्यान नहीं दिया। इसका मां को भी बड़ा अफसोस है। मां पिताजी को समझाते हुए कहती है, "निर्मला को देखो, नौकरी करती है, आराम से रहती है। हमारी सुषमा भी वैसे ही रहेगी। उसे कोई तकलीफ ना होगी।" सुषमा जानती थी कि, रिटायर होने में तीन साल बाकी है, बच्चे छोटे हैं, सुषमा की शादी हो जाती तो सारी आर्थिक गड़बड़ हो जाती, उन्होंने अपना स्वार्थ देखा और सुषमा के कंधों पर परिवार का दायित्व डाल दिया।

दिल्ली के कॉलेज की नौकरी मामूली नहीं थी, यहां पर भी लोग किसी को जाने नहीं देते थे, जवानी में ही उसकी जिंदगी समाप्त हो गई थी। घर का दायित्व उस पर इस कदर छाया हुआ था कि,"मैं केवल साधन हूं। मेरा अपना कोई महत्व नहीं, विवाह करके परिवार को निराधार छोड़ देना, मेरे लिए संभव नहीं। मैंने अपने को ऐसी जिंदगी के लिए डाल दिया है।" बाहर के लोग आकर जब सुषमा की शादी की चर्चा करते हैं तब मां सारा दोष सुषमा पर ही डाल कर अलग हो जाती है। "अब मैं क्या करूं सयानी लड़की है, कोई बच्चा तो नहीं जो समझाने-बुझाने में मान जाएगी। वह शादी करने राजी नहीं होती तो मैं क्या करूं ? मोहल्ले वाले उसकी बात मान जाते। परंतु जब उसकी आँख सुषमा से मिलती तब वह इधर-उधर देखने लगती। सब जानते थे कि इस घर की आय सुषमा का वेतन है।" सुषमा की अपनी मां की दोहरी बातें कभी-कभी खटकने लगती थी। घर में मां का शासन चलता, पिता अस्वस्थ थे, पक्षाघात से पीड़ित। सुषमा मां से अधिक पिता के निकट थी। मां सुषमा की ओर से निश्चित थी उसका सारा ध्यान छोटे बच्चों पर था। सुषमा प्रायः उपेक्षित-सा महसूस करने लगी थी। वह चाहती थी कि मां उसके जीवन में आए बिखराव को नजदीकी से समझे। मां ने सुषमा की छोटी बहन नीरु की शादी का जिक्र किया था। तो सुषमा ने कहा था कि कर्ज लेकर देगी। मां सुषमा को बार-बार कहती नीरू तुम्हारी थोड़ी-सी जिम्मेदारी है। बाप है सो करेंगे, सुषमा सोचती, पिता ऐसा सोचते तो उसकी भी शादी की कभी चिंता करते। पर सुषमा समझदार है, वह जानती है, नीरू उसकी जिम्मेदारी है।

उस समय आर्थिक विषमता ने उसमें दायित्व बोध को जगा दिया था। नौकरी के लिए उसे कहां-कहां नहीं भटकना पड़ा। किस-किस प्रकार की बातें नहीं सुननी पड़ी। अब इस नौकरी को पाकर उसे लगा था कि आर्थिक भंवर में फंसे परिवार को, जीवन नौका को उसने किनारे लगा दिया। "अम्मा ने एक बार कृष्णा मौसी से कहा था कि नीरू के लिए एक साड़ी कड़वादे, साल छः महीने में उसकी शादी होगी तब कृष्णा मौसी को आश्चर्य-सा हुआ था। उसने उसे फटकार ते हुए कहा था "क्या दीदी सुषमा को कुंवारी रखोगी ? इसका ब्याह नहीं करोगी जो अभी से नीरू के लिए दहेज जोड़ने लगी।" अम्मा ने जो सफाई दी उससे वही अपराधी सिद्ध हुई। उसने कहा "सुषमा की शादी तो अब हमारे बस की बात रही नहीं। इतना पढ़ लिख गई अच्छी नौकरी है और अब तो, क्या कहने हैं, हहस्टल में वार्डन बनने वाली है। बांगला और चपरासी अलग से मिलेगा बताओ, इसके जोड़ का लड़का मिलना तो मुश्किल ही है। तुम्हारे जीजा तो कहते हैं, लड़की सयानी है, जिससे मन मिले, उसीसे

कर ले, हम खुशी-खुशी शादी में शामिल हो जाएंगे।" मौसी ने उसे फटकार ते हुए कहा था, जब लड़की सयानी थी, तब आजादी नहीं दी अब उसे लड़का ढूंढने के लिए कह रही हो। "लड़कियां सभी की होती है, शादियां भी सभी की होती है, तुम्हारी तरह हाथ पर हाथ रखकर बैठने वाला कोई नहीं देखा।"

नील द्वारा लाई गई साड़ी पर नीरू ने चाय गिरा दी आने वाले के सामने फूहड़पन से पेश आई। उन लोगों ने कह दिया कि सुंदरता के साथ स्मार्टनेस भी होनी चाहिए। उनके जाने के बाद मां सुषमा पर बरस पड़ती है। उसने रद्दी-सी साड़ी क्यों पहनी ? सुषमा क्रोधित हो कहती है "तुमने मुझे बहुत सारा गहना गढ़ा दिया है न जो पहन लेती। अम्मा ने कहा था, खर्चे कम करोगे तो पैसे बचेंगे ! तो सुषमा कहती है, "जरा अपने दिल के अंदर झांक कर देखो कि तुमने क्या किया मेरा आराम से रहना तुम्हें खटकता है।" तुम शादी तय करो नीरू की, मैं अपने सारे गहने कपड़े उठा कर दे डालूंगी।" उषा प्रियंवदा जी की शैली भावात्मक, विवरणात्मक तथा व्यंगात्मक है। उनके उपन्यासों में विवरण शैली के दर्शन होते हैं, तो कहानियों में भावात्मक तथा व्यंग परिलक्षित है। उनकी सहज कथन शैली तथा यथार्थ का चित्रण बेजोड़ है। भावुकता, माधुर्य और उनकी शैली की विशेषता है। सुषमा को अपनी नौकरी बचाने के लिए अपने प्रेम की कुर्बानी देनी पड़ती है। स्वयं को पचपन खंभे लाल दीवारें में कैद होना पड़ता है। स्त्री की त्रासदी का इससे करुण रूप और क्या हो सकता है।

सुषमा के विरुद्ध लड़कियों और सहयोगी प्राध्यापिकाओं ने जो आरोप लगाए उसे पढ़कर प्राचार्या ने उसका इस्तीफा मांगा था यदि वह दे देती तो नीरू की शादी कैसे करती ? उसने सबसे पहले नील को हॉस्टल आने से मना कर दिया। प्राचार्य जी से माफी मांगी और कॉलेज से लोन निकालकर नीरू की शादी में जुट गई। तब सुषमा का उतरा हुआ चेहरा देखकर मामी ने कहा था, "एक लड़की का गला काट, दूसरी का ब्याह रचा कर बड़ी बीवी ने अच्छा नहीं किया । " उसके कंधों पर छह का बोझ आ पड़ा था। आज की नारी परंपरागत मूल्यों की अपेक्षा सामाजिक मूल्यों को स्वीकार कर रही है। बाधक मूल्यों के विरोध में विद्रोह करने की क्षमता आ गई है। उषा प्रियंवदा(जन्म २४ दिसंबर, १९३०) प्रवासी हिंदी साहित्यकार है। कानपुर में जन्मी उषा प्रियंवदा जी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए.तथा पीएचडी की थी। दिल्ली के लेडी श्री राम कहलेज और इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अध्यापन किया था।

इसी समय उन्हें फुलब्राइट स्कॉलरशिप मिली और वे अमेरिका चली गई। अमेरिका के ब्लूमिंगटन इंडियाना में २ वर्ष पोस्ट डोक्टरल अध्ययन किया और १९६४ में विंसकासीन विश्वविद्यालय, मेडिसिन दक्षिण एशियाई विभाग में सहायक प्रोफेसर के पद पर कार्य प्रारंभ किया। सेवानिवृत्त होकर लेखन और भ्रमण चालू है। उनके साहित्य में छठे और सातवें दशक के शहरी परिवारों का संवेदना पूर्ण चित्रण मिलता है। उषा प्रियंवदा जी को राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल से पद्मभूषण भी प्राप्त हुआ है। पचपन खंभे लाल दीवारें(१९६१) पहला उपन्यास उषा जी का है।

संदर्भ-

1.पचपन खंभे लाल दीवारें-उषा प्रियंवदा
2.स्त्रीवादी साहित्य विमर्श-जगदीश्वर चतुर्वेदी
3.हिंदी उपन्यास में स्त्री अस्तित्व की अभिव्यक्ति-डॉ. वीनारानी यादव
4.साठोत्तरी हिंदी कहानी और महिला लेखिकाएँ-डह. विजयावारद
5.प्रतिध्वनियां-दीप्ति खंडेलवाल
6.स्त्रीवादी महिला उपन्यासकार-डॉ.वैशाली देशपांडे
7.अंतिम दशक के महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में स्त्री विमर्श-डॉ.कृष्णा पोतदार

सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक : नारी की सार्थकता का बोध

प्रो. डॉ किशोर माणिकराव पवार
kishorpawar2345@gmail.com

सारांश -

सुरेंद्र वर्मा का ' सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक ' यह नाटक महारानी शीलवती की स्वाभाविक लज्जा, परपुरुष से मिलन का अस्वीकार, संकोच और तदनंतर कामानुभव से उत्पन्न उन्माद तथा किसी अन्य पुरुष से अपनी पत्नी के समागम में बीतती रात्रि में महाराज ओक्काक की पीड़ा और सूर्य की पहली किरण उगने की प्रतीक्षा में अस्वस्थ मनस्थिति का चित्रण है | एक ओर नियोग के प्रावधान से शीलवती के कामानुभव तथा प्रेय का भाव, निर्बाध - उन्मुक्त समागमानंद की अनुभूति व चाह, शरीर की मांगों का स्वीकार तो दूसरी ओर ओक्काक के लिए अपनी असहायता, सहनशक्ति की - आत्मसम्मान की व एक अपुरुष पति की परीक्षा तथा छटपटाहट है | तो दूसरी ओर संतानप्राप्ति के लक्ष्य का ध्यान करने, सादर होने के लिए महामात्य द्वारा सुझाव के प्रति महारानी शीलवती का विद्रोह है | " उन क्षणों में कहां होता है ध्यान ? उस आवेश और अकुलाहट में... उस उत्तेजना और उन्माद में ... उन सांसों और उच्छवासों में... सारे शरीर में दौड़ती हुई बिजली की तरंग जैसी उस तृप्ति के साथ कौन सी स्त्री है तुम्हारे संसार की, जो होने वाली संतान का ध्यान कर पाती हो ? नारीत्व की सार्थकता मातृत्व में नहीं, महामात्य ! है केवल पुरुष के पुरुष से संयोग के इस सुख में..." 1

<u>शब्द संकेत</u> -

अ) सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक यह कामोत्सव, कामभावना की यात्रा का सूचक शब्दहै | आ) नियोग यह पति की शारीरिक क्षमता के अभाव में संतान प्राप्ति हेतु राजमहिषी को इच्छानुरूप पुरुष चयन का प्रावधान अधिकार देने की व्यवस्था है | इ) नियोग = (सं. पु.) नियोजित या नियुक्त करने की क्रिया, प्रवृत करना प्राचीन भारत की एक परंपरा, जिसके अनुसार पति से संतान न होने पर स्त्री संतानोत्पति हेतु किसी अन्य पुरुष से संभोग कर सकती थी | 2 ई) धर्मनटी राजा की क्षमता से वंशवृद्धि न होने पर अर्थात शासन उत्तराधिकारीप्राप्ति हेतु नागरिक प्रत्याशी समुदाय में से किसी एक पुरुष को समागम हेतु चयन करने, माला लिए मंच पर उतरती स्त्री को धर्मनटी कहा जाता है | उ) उपपति उत्तराधिकारी प्राप्ति के लिए किसी अन्य पुरुष का चयन करने पर उस पुरुष को पति कहा जाता है | ऊ) असूर्यस्पर्श्या ऐसी शीलवान स्त्री जिसका स्पर्श सूर्य ने भी ना किया हो |

संशोधन पद्धती प्रस्तुत विषय पर शोध के लिए हमने विश्लेषणात्मक आलोचनात्मक पद्धति का उपयोग किया है |

प्रस्तावना -

भारतीय चिंतन कामविषय अर्थात काम जीवन पर प्रगाढ़ चिंतन करता है , उसे सामाजिक रूप देकर सामयिक बनाता है | इस संदर्भ में हम शिवलिंग का सामाजिक स्वीकार अनुभव करते हैं | कामजीवन की सहज सफलता से सृजन इच्छा की पूर्ति होती है | स्त्री - पुरुष संबंधों का चित्रण सुरेंद्र वर्मा ने अपने नाटकों, एकांकियों में सूक्ष्मता और रंगमंचीय कलात्मकता से किया है ; *' जिसमें प्रताड़ित, आशंकित, छटपटाती, सामाजिक बंधनों को उधेड़ती काम समस्या, परित्यक्ता, संबंध से युक्त असंबंधों में तनाव तदजनित समस्या ' 3* नियोग प्रावधान से महाराज की मानसिक त्रासदी आदि की कुशल अभिव्यक्ति है |

वैवाहिक प्रतिबद्धता भारतीय समाज तथा संस्कृति में एक सामाजिक पारिवारिक तथा सांस्कृतिक मूल्य माना जाता है | विवाह चाहे जिस किसी स्थिति,

परंपरा, भावना, कर्तव्य से संपन्न हो; साथी के प्रति तन - मन - धन से समन्वित सर्वंकष होता है | इसी एकरूपता की भावना से संबद्ध होता है, जिसे पवित्र, पावन संबंध कहा जा सकता है| आधुनिक समय में पति - पत्नी संबंध इसी प्रकार अभिप्रेत है | परंतु वर्तमान स्थितियों में जब हम विश्व के विभिन्न प्रभावों से प्रभावित होते हैं, ऐसे में पति - पत्नी संबंध की भावना अपने पारंपरिक स्वरूप में सार्वत्रिक तथा शत-प्रतिशत प्राप्त हो पाना असंभव भी है| इसके मूल में पति-पत्नी के जीवन की विभिन्न आपदाएं होती है ; जिनमें से एक असफल काम जीवन होता है|

सहचर की अक्षमता से कामजीवन का अननुभव अपनी मर्यादा में अनापत्ति हो सकती है, परंतु नियोग प्रावधान से महारानी शीलवती को प्राप्त कामसूत्र जीवन का परिचय करा देता है|

शीर्षक की सार्थकता अपने काव्यात्मक एवं प्रभावी संकेतात्मक शीर्षक से नाटककार सुरेंद्र वर्मा के रचनात्मक कौशल का परिचयात्मक संकेत मिलता है | इस सन्दर्भ में रामबजाज गोपाल लिखते हैं, *" इतना लंबा नाम ! 'सूर्य' शब्द के दुहराए जाने में वक्तव्य का बलपूर्वक आग्रह लगा / काव्यात्मकता अपनी जगह / ..../ वैसे तो 'बात एक रात की' कहा जा सकता है / रात के बोझिल अंधकार और रात के साथ जुड़ी दूसरी ध्वनि योन- बिम्ब धारण करती है/ "4*

इस नाटक का आवरण चित्र सारित द्वारा बनाया गया है ; जिसमें केवल दो आंखें और सूर्य का चित्र है| सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक के समयांतराल के लिए प्रतीक्षारत यह आंखें हैं | स्पष्ट रेखाओं से रात्रि का अंधकार, जीवन जगत का विस्तार तथा सगा समागम के बिना दांपत्य जीवन का धुंधलका निरर्थकता प्रतीती का परिचायक है | ऊपर सूर्य की अंतिम साथ ही पहली किरण वाली छवि है | भौतिक जीवन के लिए सूर्यास्त से सूर्योदय की समय सीमा विश्रामदायक है ; वहीं दांपत्य जीवन के लिए सुखदायक है | सूर्य, आंखें व् धूसर रेखाओं से बना इसका आवरण चित्र नाटक के कथ्य को संकेत करता है| यह चित्र सार्थक व समर्थक बन पड़ा है , जो शीर्षक की प्रभुविष्णुता को सहज चित्रित करता है |

इस प्रकार नाटक का यह शीर्षक सार्थक है |

' सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' यह शीर्षक विस्तृत अर्थात लंबा है, परंतु उसमें निहित अर्थ संकेत के लिए उचित है | संकेतित समयांतराल हेतु इसका दीर्घ विरोध होना भी आवश्यक है | यह समय महाराज ओक्काक के लिए पीड़ादायक तो महारानी शीलवती की दृष्टि से सुखावह है | नाटक के आद्योपांत यह शीर्षक दर्शक, पाठक को असहज से सहज बनाता है| इस प्रकार नाटक का यह शीर्षक सार्थक है |

कथानक 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' इस नाटक का कथानक कुल आठ पात्रों के माध्यम से मंचित , घटित होता है| इसके कथ्य प्रस्तुति हेतु तीन अंकों का संयोजन है | राजप्रासाद के शयनकक्ष के दृश्य से नाटक का आरंभ होता है| प्रतिहारी महत्तरिका के संवादों से महादेवी की जड़वत व् महाराज की असहज स्थिति, मनस्थिति किसी का सामना करने की नहीं है | यह स्थिति किसी के वश की नहीं है, अत: कोई अनहोनी प्रतीत होती है |

महादेवी विवाहपूर्व अपने समान दरिद्र युवक प्रतोष की वाग्दत्ता थी, जो वर्तमान में बड़े व्यापारी हैं | महाराज उद्यान में बैठे हैं, विगतसाथ रातों से सोए नहीं है | भूखे व् चिंतामग्न हैं | उधर महादेवी का अनुलेपन, स्नान के उपरांत श्रृंगार हो रहा है | महामात्य को महाराज के अस्थिर मन से भय, चिंता है | घोषणा से राजप्रासाद के कर्मचारी अनमने से हैं; अतः देखभाल के अपने कार्यों को नहीं कर रहे हैं |

मर्यादा, संस्कृति से प्रतिबंधित शीलवती संतान प्राप्ति हेतु किसी अन्य पुरुष की एक रात्रि की पत्नी बनने

में संकोचशील हैं | जनता के लिए उत्तराधिकारी प्रदान करने हेतु व्यवस्था उन्हें विधान व पूर्व संदर्भों से अवगत करा लेती हैं | शीलवती को अपने पूर्ववाग्दत्त प्रतोष का वरण करना सुविधाजनक होता है | दोनों में अपने जीवन के संवाद उपरांत मिलन होता है |

अपनी धर्मपत्नी का उपपति अर्थात अन्य पुरुष के साथ एक रात मिलन की स्थिति से उद्वेलित ओक्काक पट बीतने व् सूर्योदय की प्रतीक्षा में विव्हल विह्वल हैं | पुरुष सुख से सद्यपरिचित एवं सिक्त शीलवती तृप्ति से अभिभूत हैं | महाराज ओक्काक, महाबलाधिकृत, महामात्य एवं राजपुरोहित को मर्यादा, धर्म, वैवाहिक बंधन के मिथ्यत्व, आडम्बर का कथन शीलवती द्वारा होता है | तीन रात्रि के वैधानिक प्रावधान को शीलवती भोगना चाहते हैं ; अतः वे निरोधक औषधि का उपयोग करती हैं | यह कामानुभव उनमें वैधानिक प्रावधान से आगे मर्यादा के स्थान पर नए मार्ग खुलवाने की कामना को जन्म देता है | इसके समर्थन में वे सामाजिक सत्य एवं शारीरिक आवश्यकता को व्यक्त करती हैं |

कथ्य - सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक का नाटककार सुरेन्द्र वर्मा ने *सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक इस ऐतिहासिक* नाटक के माध्यम से जनता के लिए उत्तराधिकारी की आवश्यकता, उससे संबंधित परंपरा व् प्रावधान, मातृत्व - पुरुषत्व के बीच उद्वेलित दाम्पत्य जीवन तथा सम्मिलन का यथार्थ प्रस्तुत किया है, जिसे निम्नांकित शीर्षकों में इस प्रकार देखा जा सकता है |

क) *संतान प्राप्ति की अनिवार्यता* : राजा हो ना जितना अभिमान, संपन्नता का परिचायक हो परंतु उत्तराधिकारी न देने पर असीम क्लेशदायक है | महाराज ओक्काक अपनी जनता को शासक रूप में उत्तराधिकारी देने में अक्षम हैं | अतः उन्हें अपने नाम को ठोकर मार कर उछल दिए जाने की स्थिति का क्लेश है | परंतु व्यवस्था को उत्तराधिकारी की प्राप्ति से प्रजा और सेना के मनोबल को बढ़ाने की विवशता है | शत्रु राज्यों के कुचक्र से राज्य बच सकेगा | मल्ल राज्य के सामान्य नागरिक को उसका जीवन सहज रूप से चलने का विश्वास मिलेगा | इस प्रकार समस्या से निकलने हेतु महामात्य के अनुसार, *" .../ कभी - न - कभी तो इस समस्या का सामना करना ही पड़ेगा" 5*

ओक्काक की पिता बनने की क्षमता से राजवैद्य ने अब हार स्वीकार कर ली है | अतः शासन तंत्र नियोग प्रथा से उत्तराधिकारी प्राप्ति के संदर्भ और विचार प्रस्तुत करते हैं | जिसके उदाहरण देते हुए महामात्य बताते हैं, *"...| दो वर्ष पहले कुण्डिनपुर और तीन वर्ष पहले अवंती राज्यों में इसी प्रकार उत्तराधिकारी प्राप्त किया गया है |" 6* महाराज की स्वीकृति हेतु उन्हें पांडवों के जन्म का संदर्भ देकर वर्तमान नियोग की संभावनाएं गिनायी जाती हैं | इस प्रसंग में महामात्य, महाबला धिकृत, राजपुरोहित व स्वयं के पिता संबंधी सहज आशंका उपस्थित कर महाराज के लिए नियोग स्वीकृति की पृष्ठभूमि तैयार करने की चेष्टा करते हैं, " नियोग का कारण दूसरा हो सकता है, नियोग का रूप दूसरा हो सकता है | कहीं यह चोरी - छिपे होता है, कहीं धूमधाम से" 7 'अंगुत्तर निकाय' के अनुसार राजा का राजा धर्म है | प्रजा से द्रोह करना 'ऐतरेय ब्राहमण ' के अनुसार निषिद्ध है | ओक्काक के कथनानुसार नियोग प्रथा के प्रयोग को लेकर अमात्य परिषद दुर्विनीत हो गई है | उदाहरण बनकर इतिहास के पृष्ठों में आकर अमृत के घूंट पीना चाहती हैं | परिषद शीलवती को मानसिक रूप से तैयार करने हेतु समुपदेश देती है कि, *"आप को संतुष्ट होना चाहिए कि संयोग से आपके सामने ऐसा रास्ता खुल गया है... कि मर्यादा को भंग किए बिना आप को संतान जैसी निधि मिल सकती है|" 8* नियोग के लिए असहज राजमहिषी को बस एक प्रक्रिया से निकलने भर की बात है,

कहते हैं | उन्हें स्वीकृति के लिए अबोध मुद्रा, घुंघराली अलकेन, दुधिया दांत... नारीत्व की सार्थकता .... मातृत्व की तृप्ति... आदि के कल्पना चित्रों का लोभ दिखाया जाता है | अंततः शीलवती सभा से सम्मोहित होकर नियोग के लिए अनुसरण करती हैं |

ख) पत्नी उपचार बनाम - महाराज ओक्काक के माता-पिता का देहान्त ओक्काक के बचपन में हुआ | विवाह योग्य होने पर उनके विवाह की तैयारी होती है, तब वे राजवैद्य से अपनी स्थिति कहते हैं | राजवैद्य उनकी परीक्षा कर मनोवैज्ञानिक ग्रंथि समझकर रोग का निदान विवाह बताते हैं | नारीत्व से पुरुषत्व के आह्वान पर मनोवैज्ञानिक क्षण में अपने आप परिवर्तन होगा | परंतु सम्मिलन की उत्ताप क्रियाओं से आगे कुछ संपन्न नहीं होता | पांच वर्ष इसी स्थिति को शीलवती तथा ओक्काक अनुभव कर कोई समाधान प्राप्त न कर सके | शीलवती अपना पत्नी धर्म निभाती रहीं | परंतु अब नियोग अनुभव के बाद शीलवती को श्रंगार, मिलनसुख परिचित हुआ है | शीलवती ऐसे सुख को पुनः प्राप्त करना चाहती हैं | जिस पर ओक्काक मर्यादा का स्मरण शीलवती को दिलाते हुए स्वार्थी कहते हैं, तब शीलवती उन्हें खरी-खोटी सुनाती हैं - कि बिना सामर्थ्य के ब्याह जैसा जघन्य पाप कर सकते हो | *" ..../ .... यानी मैं तुम्हारे लिए केवल जड़ी - बूटी थी ? केवल एक उपचार ? तुमने यह नहीं सोचा कि अगर यह चिकित्सा बेकार गई तो इस जीवन्त औषधि पर क्या बीतेगी ? 9* शीलवती ओक्काक द्वारा इस जघन्य अपराध के बाद भी उनसे घृणा नहीं करती | ओक्काक के व्यक्तित्व के दूसरे पक्ष से वे समाधानी हैं |

ग) *शीलवती : पतिनिष्ठा व् नियोग के बीच दोलायमान* - मर्यादा से युक्त हैं | उन्होंने अपने पति ओक्काक को यथास्थिति स्वीकार कर लिया है | उन्हें सारे सांचे को तोड़फोड़ कर नए सिरे से स्वीकार करना कठिन है | शीलवती को कविजन असूर्यस्पर्श्या का विशेषण देते रहे हैं | वही असूर्यस्पर्श्या अब अपरिचित पुरुष से समागम करने चली है| उनके लिए यह रात संग्राम की है; जहां वे अपने को समर्पित कर देंगी | "सारे संस्कारों के जाल छिन्न-भिन्न करके मूल्यों और मर्यादाओं को तोड़कर, अपना पूरा मनोबल इकट्ठा करके मुझे आज इस घड़ी तक पहुंचना था... उसके लिए दूरी की आवश्यकता थी, अनिवार्य थी ...|"10 उन्हें इस स्थिति से उबारने के लिए कोई कुछ नहीं कर सकता; इसका खेद शीलवती को है | इस स्थिति में वे अंतर्मुखी हो कहती हैं , "वेश्याओं के मनोबल की जितनी सराहना की जाए कम है |"11

महाराज की अक्षमता और नियोग प्रथा के संदर्भों से शीलवती को नियोग के लिए तैयार करना अमात्य परिषद के लिए सहज नहीं था | शीलवती के अनुसार इस बात को महामात्य एक स्त्री की दृष्टि से नहीं देख सकते | बिल्कुल अजनबी पुरुष के साथ मिलन उनके लिए उद्वेलित करने वाला है | अनेक तर्क, आवश्यकता , लक्ष्य बताकर उन्हें सम्मोहित कर उनकी स्वीकृति ली जाती है | वे धर्मनटी बन अपने धर्म के पालन के लिए नत होती हैं |किसी से पहली भेंट में संबंध को चरमसीमा तथा भग्नता का अंतिम सोपान कहती हैं |

घ) *शीलवती - तृषिता से तृप्ता* शीलवती अपने जीवन में श्रृंगार सुख से अपरिचित, अनभुक्त हैं | परंपरा से वह मर्यादा,धर्म,शील, वैवाहिक बंधन स्वीकार कर अपने पारिवारिक व सामाजिक जीवन को जीने के लिए बाध्य हैं | पति ओक्काक से शरीर सुख न मिलने की स्थिति को, जीवन के इस रूप को अपना चुकी है | परिषद और व्यवस्था से विवश होकर वे समर्पण सिद्ध हुई हैं | व्यक्तिगत सुख खोज की यात्रा में वे अब निकल पड़ी हैं | इस सुख प्राप्ति के लिए वे प्रदोष से याचना करती हैं | प्रतोष के स्पर्श से सुख का पहला अनुभव करती हैं | आधी रात्रि बीतने के प्रदोष के वाक्य को कठोर वचन कहती हैं | *आधी रात और बची है* उनका यह कथन उनकी

तृषापूर्ति की अपेक्षा दर्शाती है | इस सुख की रात्रि में उन्हें नींद ही नहीं ; मृत्यु भी न आने की भावना व्यक्त करती हैं |

प्रतोष से गंध और आनंद पाकर तृप्ति का मदभरा अनुभव लिए वे राजप्रासाद लौटती हैं | प्राप्त विशिष्ट अनुभवों को ओक्काक से साझा करती हैं | कल तक खोने के आक्रोश व कल पानी का संतोष, सम्मिलन, देने का आवेग, लेने की व्याकुलता, वह साझेदारी और प्रकृति परिवर्तन का दांपत्य जीवन पर पड़ते प्रभाव को समझाती हैं | यहां सुख की स्थिति में स्वाभाविक उद्दंडता भरती हैं | अतः वे ओक्काक से कहती हैं, "...| ... लेकिन तुम्हारे साथ मैं भी इसकी जानकारी से वंचित रहूं ? क्यों ? किसलिए ? " और पांच वर्ष मर्यादा निभाने में उतना संतोष नहीं मिला, जितनी तृप्ति इस एक रात में मिली है |" 12 "महत्तरिका पर झुंझलाती, चक्रवाक् को आहार नहीं मिलता था, चित्रालेखा फाड़-फाड़कर फेंकती थी, द्रुत रागों में वीणा के तार टूटते थे, बेचैन सी शैय्या पर करवटें बदलती (एक पंजा बढ़ाते हुए) और जान लो कि ...तुम्हारा मुंह नोचने का मन होता था..." 13

सुख, सिहरन, रोमांच से अब तृप्त शीलवती भरी गगरी समान छलकी जा रही हैं | कल रात हुई बड़ी क्रांति और तन - मन के बदले इतिहास को, अनुभवों को बांटना चाहती हैं |कामानुभव सिक्त शीलवती अब महामात्य, राजपुरोहित व महाबला धिकृत से उनके रात्रि के शयन कक्षसंबंधी प्रश्न करती हैं | यहां उद्दंड होकर वे पांच वर्ष शील का विचार करने की बात कह कर सबसे स्थिति के स्वीकार की बात कहती हैं | जीवन वह संसार की भाग - दौड़, छल - कपट आदि में रात की वही घड़ियां हैं, जिनमें आदमी अपने को भूलकर थोड़ा सुख पाता है | तब महामात्य मर्यादा की बात करते हैं | परंतु शीलवती के अनुसार इन खोखले शब्दों का जादू टूट चुका है | उनके अनुसार मर्यादा, धर्म ,शील, वैवाहिक बंधन सब मिथ्या है , आडंबर, पुस्तकीय है | उन्हें पुस्तक नहीं जीना , अब उन्हें जीवन जीना है | वे उनके जीवन का यथार्थ व्यक्त करती हैं कि वे ब्याहता स्त्री हैं , परंतु उनके जीवन का कामशास्त्र से क्या संबंध है ? महामात्य द्वारा दिए परामर्श पर वे उन्हें मूर्ख कहती हैं |

तृप्ति के अनुभव से वे बाकी दो रात्रि के अवसर को भोगना निश्चित करती हैं | रात का कोई परिणाम ना हो, इसलिए उन्होंने उपपति से निरोधक औषधि ली है, आगे भी लेंगी | आगे वे मर्यादा पालन न करने का संकेत देती हैं | वे स्वीकारती हैं कि जब शरीर के माध्यम से जीती हूं, तो शरीर की मांगों को कैसे नकार सकती हूं | वे जीवन ली जटिलता, उनकी मांगों की पूर्ति का सत्य समझती और स्वीकारती हैं |

च) ओक्काक : आहत, विवश, विह्वल तथा अधिकारभावना से युक्त महाराज का नाटक के महत्वपूर्ण व केंद्रीय पात्र हैं | अपनी चारित्रिक विशेषताओं से एक सरल व्यक्ति हैं | बचपन में उनके माता-पिता की मृत्यु देख चुके हैं | उनके नाम से अमात्य परिषद ने उनका शासन चलाया था| वयस्क होने पर उन्हें गुरुकुल से राजधानी बुलाया गया , उनके राज्याभिषेक व विवाह की तैयारी हुई | किसी भी राजदुहिता से कुंडली ना मिलने से दरिद्र घर की कन्या से विवाह की तैयारी हुई | तब ओक्काक ने राजवैद्य से अपनी काम कल्पना व निष्प्रभाव का कथन किया | राजवैद्य ने परीक्षा के उपरांत यह निष्कर्ष निकाला कि बचपन में अनाथ होना ,किसी से न घुल - मिल जाना , अंतर्मुखता, निर्णय दुर्बलता, आत्मविश्वास की कमी, ठंडा स्वभाव, अनेक व्याधि आदि से यह स्थिति है | जिसका उपचार विवाह से होगा | सभी रिश्तों का स्नेह पत्नी से प्राप्त हो आत्मविश्वास मिलेगा | पत्नी से पुरुषत्व के आह्वान में पुरुषत्व जागृत होगा | परन्तु विवाह के पांच वर्ष बाद भी ओक्काक में सुधार व परिवर्तन हुआ | सफलता व किसी परिणाम पर ना पहुंचने से व्याकुल, विह्वल व असहाय हैं | " ..../ *(फुटकर) मैं बार-बार पूछता अपने*

शरीर से की इसके बाद क्या होता है" 14 परंतु उत्तर के रूप में केवल अंधकार मिलता | यहां ओक्काक की एक मनोग्रंथि दृष्टव्य है, वे शारीरिक क्षमता न होने पर कोई खेद नहीं रखते , न ही शीलवती का कोई विचार करते हैं | परंतु नियोग से वंश वृद्धि का विचार उनके लिए लज्जाजनक है | उन्हें दुख है कि ल्ल राज्य का शासक नपुंसक होने, गर्भाधान के लिए पति का बाहर जाने की चर्चा सैकड़ों वर्षो बाद होती रहेगी | उन्हें इतिहास व वर्तमान के संदर्भ देकर परिषद उनसे स्वीकृति के प्रयत्न करती हैं | तब वह क्रोधित होकर प्रतिवाद करते हैं | अंततः असहाय होकर नियोग घोषणा की स्वीकृति देते हैं | विवश होकर पत्नी को अधिकार देते हैं, " आपको आज की रात के लिए - सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक, उपपति चुनने का अधिकार देता हूं |" 15 उपपति चुनने की सूचना नगाड़े से देने पर ओक्काक व्याकुल हो दयनीय स्थिति में आते हैं | वे अपने को पुरुष मानते रहे | यहां वे शीलवती द्वारा संपूर्ण, पुंसत्व वाले किसी पुरुष के चयन में ईर्ष्या करते हैं | घोषणा से सातवें दिन तक वे स्वीकार नहीं कर पा रहे कि कोई अपरिचित पुरुष उनकी शीलवती का भोग करेगा , उनका समाधान करेगा | इसी भावनिक त्रास से वे दैनंदिन कार्य विस्मृति का अनुभव करने लगे हैं | उन्हें अब निद्रा नहीं आती है | सत्य के स्वीकार में वे सहमत नहीं होते | उन्हें यह बात एक घाव के समान वेदनादायी प्रतीत होती है | जीवन और प्राण रहते इसे स्मरण रहने का मर्मान्तक कारण मानते हैं |

अपनी प्रिय पत्नी का धर्मनटी बनना उन्हें स्वीकार्य नहीं है , "(दोनों कानों पर हाथ रखकर, ऊंचे स्वर में) मत बोलिए मेरे सामने यह शब्द!... मुझे इस शब्द से घृणा है धर्मनटी !"16

राजवंश का नाम बनाए रखने का ऐसा ढंग उन्हें ग्लानि से भर देता है | अपनी शारीरिक कमी को वे आत्मसम्मान के साथ जैसे सूक्ष्म जीवंत तार से, कोमल मर्म बिंदु से जोड़कर निरस्त करने का प्रयास करते हैं |

नियोग के लिए निमंत्रण की हुई घोषणा उन्हें मामन्तक पीड़ा देती है | एक दिन में पचास योजन तक पहुंचने वाले धावकों द्वारा दिया गया समाचार उन्हें आहत करता है | उन्हें यह समाचार चारों ओर सर्व व्याप्त होने की वेदना है |

नियोग की रात वे जीवन की निर्लज्जता का अनुभव करते हैं | उन्हें इस रात ने उनमें प्रतीक्षा की चरम सीमा और सहनशीलता भर दी है | घोषणा से प्रत्यक्ष घटना तक ओक्काक मदिरा का आधार लिए हैं | वे स्थिति व मनस्थिति की चर्चा दासी से करते हैं | वे अपने राजा होने की विडंबना को अभिव्यक्त करते हैं , " मेरा कोई मित्र नहीं , कोई अंतरंग नहीं | राज सिहासन एक अदृश्य दीवार है ,जिसे लांघकर न मैं उस और जा सकता हूं , न उस ओर से कोई इस ओर आ सकता है | ... मैं किसी के अनुभवों से लाभ नहीं उठा सकता, किसी को अपने भेदों का भागीदार नहीं बना सकता, किसी से अपना दुख नहीं बाँट सकता |" 17 उन्हें अपने अपूर्ण पुरुष होने पर खीज के साथ उलझन, पहेली है कि समाज, संसार, साहित्य व वर्जनाओं का उनसे कोई मेल नहीं है | "...| संसार- क्रम का यह एक और अकेला चक्र... अंजाना है मेरे लिए... साहित्य - ग्रंथों के इतने सारे अंश ... वांग्मय के इतने विवेचन... धर्म शास्त्र की वर्जनाएं ... ये बलात्कार... ये आत्मसमर्पण... यह चीरहरण... केवल एक उलझन है मेरे लिए, बस एक पहेली ...! 18

ओक्काक पत्नी पर एकाधिकार की भावना से ग्रसित हैं | वह अपनी पत्नी पर एक रात के लिए किसी का अधिकार स्वीकृत नहीं कर पाते | एक रात के बाद पुनः मर्यादा का बंधन व एकमात्र अपना अधिकार थोपना चाहते हैं | उन्हें अपनी पत्नी के धर्मनटी से कामनटी यह परिवर्तन खीज उत्पन्न करने वाला है |

छ) प्रतोष : उपचारात्मक, विवेकी व सक्षम उपस्थिति : इस नाट्य का एक उपचारात्मक उपस्थितिसम पात्र प्रतोष है | प्रतोष पूर्व काल में एक सर्वसाधारण युवक थे | वह दरिद्र कन्या शीलवती से अनुरक्त थे | आर्थिक विडंबना से वे अपनी प्रेयसी को प्राप्त न कर सकने की स्थिति में अर्थार्जन का निश्चय कर लेते हैं | वे इस स्थिति में अनुभव कर चुके हैं कि आस्था,मूल्य विश्वास, सिद्धांत कहीं नहीं हैं | कहीं कुछ है - तो मुद्रा , व्यक्तिगत सुख | उसी के संग्रह का निश्चय कर वे धन प्राप्ति में छह प्रहर जुटकर मुद्रा राक्षस बन जाते हैं | अब वे सुख दुख से परे होकर सोचते हैं | उनके अनुसार वैभव के अभावों में जो नहीं मिला वह उतना महत्वपूर्ण नहीं है | विवाह उनके अनुसार व्यक्तिगत सुख की परिधि में नहीं आता | शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के और रास्ते उन्हें अब प्राप्त हैं | अतः सद्यप्राप्त शीलवती व उसके कौमार्य में उन्हें कोई रुचि नहीं है | अत: शीलवती को यथावत लौट जाने की बात कहते हैं | यहां प्रदोष में एक सहज सरल प्रेमी एवं समाधानी व्यक्ति की विशेषता दृष्टिगोचर होती है | सुखसाधन से युक्त समाधानी व्यक्ति का परिचय भी होता है | वे आर्थिक विपन्न स्थिति से हुए अन्याय का अब संपन्न बनने पर, मनचाहा सुख प्राप्त होने ; पर काम आतुर नहीं होते | यहां वे एक निरपेक्ष बर्तन का परिचय करा देते हैं | अतः वे पूर्व प्रेयसी को मुक्त कर देते हैं | अपने नाम के अनुरूप बर्तन से संतोष, परितोष का परिचय देते हैं | परंतु शीलवती की याचना व आग्रह से वे शीलवती से एकाकार हो, उसे अपेक्षित व अनभुक्त सुख का परिचय, अनुभव करा देते हैं | शीलवती को नारीत्व का अर्थ, पुरुष से मिलन सुख में नारीत्व की सार्थकता का परिचय उन्हीं से होता है | इस प्रकार प्रतोष की उपस्थिति उपचारात्मक, विवेकी, समाधानी व सक्षम उपस्थिति सिद्ध होती है |

इस प्रकार सुरेंद्र वर्मा का यह नाटक ऐतिहासिक व वर्तमान प्रतिष्ठित वंश की एक प्रथा को प्रकट करते हुए उसकी सार्वत्रिक सार्वकालिक वर्तमानता को, विद्यमानता को प्रछन्न रूप में प्रकट करता है | जिसका प्रकटीकरण ओक्काक शीलवती के संवादों से हुआ है | " हाल ही में दो अभियोग आए थे न्यायालय में... (कुछ घूँट लेता है) व्यापारी नागेश ने अपनी पत्नी का उपयोग किया था | अभियोग अनुदान आयोग के अध्यक्ष पर था ....|"19 " दूसरा अभियोग एक गायक की पत्नी की ओर से था, ...| उसका कहना था कि धनी नागरिक उद्दालक की पत्नी से उसके पति का अनैतिक संबंध था |...." 20 समाज नैतिकता, मर्यादा की बातें करता है| वहां समाज के लिए कोई अपवाद स्वीकार्य नहीं रहता | विवाह से अन्याय ग्रस्त पांच वर्षों तक अपरिचित, अतृप्त शीलवती अब विद्रोह की मुद्रा में सामाजिक सत्य को आधार बनाकर मर्यादा, नैतिकता की पोल - खोल करती है, " .... कितनी युवतियां हैं, जो ब्याह से पहले ही कुमारी नहीं रहती... और मैं ब्याहता हो कर भी ब्रह्मचारिणी थी... लेकिन कब तक ? ... मैं एक मामूली स्त्री हूँ | जब शरीर के माध्यम से जीती हूं, तो शरीर की मांगों को कैसे नकार सकती हूं ?" 21 इस प्रकार यह नाट्य अपवादात्मक स्थिति के न्याय व नारी की सार्थकता का बोध कराने में सार्थक व समर्थ है | नीति, मर्यादा, पवित्र के विचार को भी यह बोध अपवाद के स्वीकार की स्थिति में ले आता है | विशिष्ट विषय की अभिव्यक्ति व रंगमंचीय कलात्मकता का विशिष्ट अनुभव देने में सुरेंद्र वर्मा की मंचीय कुशलता निस्संदेह विशिष्ट है |

सन्दर्भ :

1. सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक - सुरेंद्र वर्मा पृष्ठ -७५
2. हिंदी से हिंदी शब्दकोष Online Dictionary
3. नींद क्यों रात भर नहीं आती - सुरेंद्र वर्मा
4. सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक - निदेशक का वक्तव्य पृष्ठ - X

5. वही प्रष्ठ - २५
6. वही पृष्ठ - २७
7. वही पृष्ठ - २८
8. वही पृष्ठ - ४०
9. वही - पृष्ठ ७८
10. वही - पृष्ठ ३९
11. वही - पृष्ठ ७१
12. वही - पृष्ठ ७१
13. वही - ७१-७२
14. वही - ६२
15. वही - ३३
16. वही - पृष्ठ २७
17. वही पृष्ठ - ५१
18. वही पृष्ठ ६०-६१
19. वही पृष्ठ - ५९
20. वही पृष्ठ -५९
21. वही पृष्ठ - ७८

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com